तीसरा अध्याय

कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों में युगीन संदर्भ

युगीन संदर्भ से तात्पर्य उस वर्तमान और अपने परिवेश से है जिसमें वह साहित्य विधा अस्तित्व में आती है। 'युग' एक ऐसी कालवाचक अमूर्त इकाई है जिसका निर्माण सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक घटनाओं तथा विचारधाराओं से होता है। युग सापेक्ष होना ही साहित्य की जीवंतता तथा प्रासंगिकता है। साहित्य और समाज का साध्य-साधन संबंध ही इसका मर्म है। साहित्य में आम तौर पर जीवन की अभिव्यक्ति होने के कारण, तत्कालीन जीवन की थडकन से वह संबद्ध रखती है। युगीन, सामयिक जीवन के अच्छे बुरे दोनों पहलुओं का साक्षात्कार साहित्य का दायित्व ही है। "साहित्यकार अपनी युगीन परिस्थितियों के साथ जो प्रतिक्रिया करता है-वही प्रतिक्रिया साहित्य का रूप लेती है। वह प्रतिक्रिया जितनी ही सही और ईमानदार होती है, साहित्य उतना ही श्रेष्ठ होता है। साहित्य युगीन और शाश्वत सत्य दोनों का साथ लेकर चलता है।"[1] युगीन सत्य की परिवर्तन शीलता तथा शश्वत सत्य का स्थायी भाव साहित्य के विषयानुक्रमणिका में साथ चलते है। समय का बदलाव समाज की तमाम परिस्थितियों और परिवेश में जो भेद लाया है वह साहित्य में भी, स्वाभाविक रूप से पाया जाता है। "समकालीन परिस्थितियाँ लेखक पर अपना प्रभाव डालती है और उन परिस्थितियों के प्रति लेखक के मन में कुछ विशिष्ट प्रतिक्रिया होती है। यही साहित्य सृजन का हेतु है।"[2] युगीन संदर्भों को एक आइने के रूप में प्रतिबिंबित करने में साहित्य अपना विशेष अस्तित्व रखता है। अपने युग विशेष से सामग्रियाँ इकट्ठा करके साहित्य की रचैया

---

[1] नाट्य चिंतन, नाटक का स्थायित्व - डॉ. चन्द्र, पृ.36

[2] नाट्य चिंतन नये संदर्भ - डॉ. चन्द्र, पृ.31

में उसे ढालकर सहृदय के सामने उसे ताजा प्रस्तुत करने में साहित्य अग्रणी है। "किसी भी युग का महान प्रतिभाशाली कलाकार अपने युग की ज्वलंत समस्याओं की उपेक्षा कर ही नहीं सकता। महान काव्य की अनुभूति के डोरे कलाकार और साधारण मानव के प्राणों को कभी भी विच्छिन्न नहीं होने देते किन्तु एक महान कलाकार में जीवन की गहनतम वेदना, उससे ऊपर उठने की प्यास और चारों ओर छाये हुए धुंधलके को चीर कर एक सशक्त जीवन दर्शन की मशाल लेकर आगे बढने का साहस होता है।"[3] पुराने समय का साहित्य जनसामान्य से हटकर था, आज का साहित्य अलग है वह जीवन को निकट रहकर देखना चाहता है और ऐसा होता भी है। एक सशक्त साहित्यकार युग की माँग के अनुरूप परंपरा का त्याग या परिमार्जन करते हुए नवीनता का सर्जन करने की कोशिश करता है। समकालीन साहित्य में समसामयिक परिवेश और युगबोध की अभिव्यक्ति को प्रमुख स्थान मिला है। साहित्यकार सामाजिक है इसलिए उसकी कृति भी सामाजिक होने को बाध्य है। साहित्य हमारे जीवन का यथार्थ और जीवंत इतिहास ही है। ऐसे साहित्य में युगानुरूपता तथा युगबोध का अधिकार ही युगीन संदर्भों का आधार है।

अगर नाटक की चर्चा करें तो वह एक जीवंत साहित्यक विधा है क्योंकि जीवन की अभिव्यक्ति उससे साध्य होती है। अपने समय के लिए प्रासंगिक रहने पर ही नाटक सार्थक बन जाता है। नाटक जीवन का प्रतिरूप कहा जा सकता है तथा उसमें मानव प्रवृत्तियों का सच्चे और सजीव प्रतिबिंब के कारण चित्तवृत्तियों तथा

---

[3] प्रगतिवाद एक समीक्षा- धर्मवीर भारती, ग्रंथावली, पृ.153

लालसाओं के समाधान का साध रह जाता है। "नाटक साहित्य की प्रत्यक्ष और सामाजिक विधा है। दर्शक समुदाय नाटक को मंच पर घटित होता देखता है। यही कारण है कि नाटक से सामाजिक का सीधा संबंध स्थापित होता है, और नाटक विभिन्न स्तर के व्यक्तियों को एक साथ प्रभावित करता है। अतः नाटक का समसामयिकता से जुडा होना आवश्यक है, अन्यथा वह दर्शक को प्रभावित नहीं कर सकेगा।"[4] पंचम वेद के रूप में जब नाट्य शास्त्र की रचना की गयी तब एक महत्वपूर्ण उद्देश्य था। एक ऐसे शास्त्र की रचना करें जो अपने समय के आगे और समय के पीछे के सामाजिक सत्य को निरूपित करते हुए हर देश काल और परिस्थिति के अनुरूप मनोरंजन के साथ सामाजिक उद्देश्यों को भी पूरा कर सके। नाटक अपने सामयिक गतिविधियों को नाट्य वस्तु का आधार बनाया है। समय के साथ हो चलने पर ही नाटक अपने में पूर्ण होता है। स्वतंत्रता के बाद घटित मानवीय मूल्यों का विघटन, वैज्ञानिक और औद्योगिक विकास, धर्मांधता, बेरोज़ गारी, बाहरी भीतरी हमला आदि से हमारी परिस्थितियों में समूल परिवर्तन आया है जो साहित्य रचना में भी एक बदलाव उपस्थित करता है। "आधुनिक हिन्दी नाटक ने एक तीव्र सरोकार से इस पर्यावरण (स्वातंत्र्योत्तर) का साक्षात्कार किया है और अपने रचना संकल्प को इससे जोडा भी है। विविध आयामी समकालीनता अपनी क्रूर मुद्राओं सहित-पचासोत्तरी हिन्दी नाटक में उभरी है।"[5] आज के नाटककार भोगे हुए यथार्थ तथा उससे संबंद्ध सारी वास्तविकताओं को उबारने में सजग रहा है। नाटक जीवन

---

[4] नाट्य चिंतन नये संदर्भ - डॉ. चन्द्र, पृ.31

[5] हिन्दी नाटक और लक्ष्मी नारायण लाल की रंगयात्रा - डॉ. चन्द्र शेखर, पृ.15

सापेक्ष और समाज सापेक्ष होने के कारण नाट्य साहित्य में युगीन संदर्भों की सबसे अधिक प्रतिक्रिया देखने को मिलती है।

अपने परिवेश को नकारकर एक साहित्यक विधा का अस्तित्व नहीं है। और उस परिवेश में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों तथा स्थितियों से बुने हुए वातावरण का अपना महत्व है। नाटककार इस समकालीन परिवेश में रहकर ही अनुभव करता है तथा उसी अनुभव को साहित्य के द्वारा अभिव्यक्ति करता है।

3.1 स्वातंत्र्योत्तर कालीन परिस्थितियाँ

साहित्यकार एक प्रत्येक युग में रचना कर्म का कार्यान्वयन करता है और उसी युग की गतिविधियों को हम साहित्य-रचना की परिस्थिति कह सकते है। युगीन परिस्थितियों से प्रभाव ग्रहण कर, अपनी कलात्मक प्रतिभा से सृजित साहित्य में युग को साकार करके कलाकार अपने सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह करता है। "साहित्यकार बहुधा अपने देशकाल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश में उठती है तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असंभव हो जाता है। उसकी विशाल आत्मा अपने देश बन्धुओं के कष्टों से विकल है और इस तीव्र विकलता में वह रो उठता है पर उसके रूदन में व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक होता है।"[6]

किसी भी रचना की अपनी विशेष परिस्थिति होती है और उसी के अनुरूप ही उस रचना का सृजन भी होता है। साहित्य और समाज का अभेद्य संबंध ही

---

[6] साहित्य का उद्देश्य- प्रेमचंद, पृ.24-25

साहित्य और परिस्थिति में निहित है। "साहित्य का संबंध व्यक्ति और राष्ट्रीय जीवन से है। साहित्यकार शून्य में रचना नहीं करता। जगत की परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना वह रह नहीं सकता, इसलिए कि वह स्वयं जगत का ही एक अंग है।"[7] इससे समझा जा सकता है कि साहित्यकार पूर्णतः परिस्थितियों पर आश्रित है। एक साहित्यकार तत्कालीन राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक जैसी परिस्थितियों से पूर्णत प्रभावित रहता है।

3.1.1 राजनैतिक परिस्थितियाँ

स्वातंत्र्योत्तर भारत के राजनीतिक परिवेश ने आज के जीवन संदर्भों को सबसे अधिक प्रभावित किया है। 15 अगस्त सन् 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ परंन्तु विभाजित होकर, साप्रदायिकता का बीजबपन करके अंग्रेज़ों ने जाते-जाते राष्ट्र को खंडित कर दिया। जिसके परिणामस्वरूप देश को गाँधी जैसे नेता को गंवाना पडा, लाखों लोगों ने अपनी जान गँवायी, उन्हें बेघर होना पडा। स्वतंत्र भारत के सामने शरणार्थियों की समस्या एवं देशी रियासतों का विलयन का प्रश्न उपस्थित हुआ। सरदार पटेल की सफल नीती से इसका समाधान हुआ। दूसरी तरफ देश के सर्वंगीण विकास की आशा-आकांक्षा लिए हुए भारत नव निर्माण में जुट गया। अस्थायी सरकार बनी जिसके प्रधानमंत्री नेहरू बने। देश को सुचारू रूप से चलाने के लिए प्रजातंत्र प्रणाली अपनायी गयी और चुनाव की व्यवस्था की गयी। 26 जनवरी 1946 को संविधान लागू कर देश में एक प्रमुख संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य

---

[7] जीवन और साहित्य (चिन्तनः मनन- सम्पादक डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र) -डॉ. संपूर्णानंन्द, पृ.18

की स्थापना की गयी। "भारत का अपना संविधान बना, समाजवादी समाज की स्थापना का सिद्धांत अपनाया गया, पंचवर्षीय योजना अपनायी गयी, औद्योगिक विकास को प्राथमिकता दी गयी। समाजवादी देशों की यात्रायें भी की और उनसे प्रभावित भी हुए किन्तु नवीन सपनों से युक्त जवाहरलाल नेहरू का व्यक्तित्व जिसके पास गाँधी की अहिंसा थे, पश्चिम का सामंतवाद था, ...उसके मोहक और चुंबकीय व्यक्तित्व में कही भी निर्माण का बल नहीं है। ...उनके अध्यक्षता काल से ही देश का आर्थिक और नैतिक विघटन शुरू हो गया था।"[8] संविधान का लागू होना प्रत्येक भारत वासी के आशा आकांक्षाओं को पुष्ट करने में एक हद तक सक्षम था। पंचवर्षीय योजनाओं का कार्यन्वयन आम लोगों के लिए बहुत उपकारी रह गया फिर भी देश कर्ज में अवश्य डूबा गया। ज़मीन्दारी उन्मूलन, फैक्टरी कानून, न्यूनतम वेतन अधिनियम तथा अस्पृश्यता अधिनियम समाज के निचली श्रेणी के लोगों के उत्थान तथा लाभ के लिए राह दिये है किंतु आंतरिक सर पर उनकी नीतियों की नाकामयाबी प्रत्यक्ष : प्रकट हुई। जन सामान्य की शिक्षा तथा स्वास्थ्य रक्षाहेतु शिक्षा संस्थानों तथा शिक्षण संस्थानों की स्थापना एक हद तक सिद्ध हुआ है।

1962 का चीन आक्रमण, 1965 का पाकिस्तानी आक्रमण भारत की आर्थिक व्यवस्था पर गहरी चोट की है। साथ ही सामाजिक तथा राजनीतिक परिवेश पर भी प्रभाव डालने में पीछे रहा। राजनीतिक-सामाजिक नैतिक मूल्यों के अपचय ने भ्रष्टाचार, शोषण और स्वार्थ प्रवृत्तियों को जन्म दिया है। बात यह निकली कि स्वतंत्रता के बाद राजनेताओं, पूँजिपतियों और नौकरशाहों की स्वार्थसिद्धी प्रजातंत्र के शोषण तथा भ्रष्टाचार को पनपने में सहायक रही है। विकास के मार्ग में रोडा

---

[8] आलोचना, अप्रैल-जून-सन् 1961, पृ.31

अटकानेवाले नेताओं का बढाव देश के राजनैतिक वातावरण को कलुषित किया है। सेवा भावी नेताओं को देखकर जनता उनकी ओर से कुछ अपेक्षा कर निर्भीक सी रही। इसीलिए नेहरू सरकार की प्रतिष्ठा बन रही थी। लेकिन 1962 के चीन आक्रमण के साथ इस सरकार की प्रतिष्ठा की पोल खुल गयी। तब उन्हें चेता आया "हमने अपनी आन्तरिक और बाह्य नीतियों पर गौर किया। समृद्धि और भाईचारे की नारेवाज़ी दर किनार हुई। जीवन की आवश्यकता और अनिवार्यताओं की वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परखने की ज़रूरत महसूस हुई।"[9] 1960 से 65 तक राजनैतिक दशा बडी अस्थिर सी रही। पंडित जवहर लाल की मृत्यु के बाद लाल बहादुर शास्त्री प्रधानमंत्री बने। इसी शासन में ताशकद में पाकिस्तान के साथ शांती समझौता हुआ। लेकिन 1966 को शास्त्री जी की मृत्यु के बाद राजनीति में सत्ता के लिए की स्थिति उत्पन्न हुई। कुल मिलाकर एक ऐसी राजनीति विकसित हुई- "जिसमें घुसकर सत्य असत्य हो जाता था। निर्दोष अपराधी और अपराधी निर्दोष बनकर बाहर आता था।"[10] शासनकर्ताओं के स्वार्थ के कारण हर क्षेत्र का पतन मात्र रहा। आज़ादी के बाद भी उस शब्द का सही अर्थ में भारत जनता प्राप्त न कर सका।

मोरार जी को पराजित कर 1966 को इंदिरा जी भारत की प्रधानमंत्री बनी। इंदिरा गांधी का शासन भारत जनता के लिए आश्वास दिलाने को काविल था। लेकिन आपातकाल की घोषणा उस पर देश की सुस्थिरता को विगाड दिया।

---

[9] समकालीन परिवेश और प्रासंगिक रचना संदर्भ- अशोक हज़ारे, डॉ. माधव सोनटक्के, पृ.9-11

[10] आधुनिक परिवेश और नवलेखन - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ.47

"आपातकाल की घोषणा स्वतंत्र भारत के इतिहास की सर्वाधिक दुःखद घटना थी। संपूर्ण देश को एक झटके में ही गूँगा और बहरा बना दिया गया। साठ करोड लोग कांठ की पुतली बन गये। यह सही है कि अधिकांश बुद्धिजीवियों ने या तो चेहरे बदल लिए और सरकारी चारण हो गये या कुछ मौनव्रत ले बैठे।"[11] 1971 के आम चुनाव में जनता ने गैर सरकारी कांग्रेस सरकार चुनी। जनता इसे हमारी आपादी के नाम पर संबंधित किये और आशान्वित भी थे लेकिन अब भी उनके सामने निराशा का घोर अंधकार रहा। सन् 1974 से 1975 तक का समय राजनीति में उथल-पुथल का रहा। संपूर्ण राष्ट्र में महंगाई, भ्रष्टाचार और असंतोष व्याप्त था जिसके खिलाफ आवाज़ उठने लगी। इंदिरा जी ने कुर्सी को बचाने के लिए आपातकालीन घोषणा करके विपक्षी राजनेताओं को कारागार में डालवा दिया। उनकी तानाशाही और सत्ता प्रियता के कारण 1977 के चुनाव में उन्हें पराजय का सामना करना पडा। मोरार जी देसाई प्रधानमंत्री पद पर आ गये। लेकिन ढाई साल के बाद फिर से इंदिरा प्रधानमंत्री बन गयी। साहसिकता और होशियारी जिसकी वजह से वे राजनीतिक अस्थिरता में भी राष्ट्रीय एकता को कायम करने में सफल रही और भारत को पुनः खंडित होने से बचा लिया। नवें दशक इंदिरा गाँधी की मृत्यु तथा राजीव गाँधी के नेतृत्व में आने की बारी थी। अरुण नेहरू के सहयोग से इंदिराजी के मरने पर राजीव गाँधी प्रधानमंत्री बनाया गया, 1984 के चुनाव में जनां देश भी उन्होंने प्राप्त किया। इस तरह से आज़ादी से लेकर आज तक अस्थिरता बनी हुई है। राष्ट्रीय एकता और जनता के विकास की आड में जनसेवा करनेवाले जन नायक अपनी तिज़ोरी भर रहे है। अपनी खिचडी अलग पकानेवाले कमीने राजनीतिज्ञ ही भारत

---

[11] धर्मयुग- गणतंत्र विशेषांक, 1980, पृ.7

का श्राप है। हमारी एसी विडंबना पर बच्चन सिंह ने लिखा है- "हमारे देश में स्थिति लाने की प्रमुख ज़िम्मेदारी आज के खोखले लोकतंत्र की है। यह स्वाभाविक अर्थ में लोकतंत्र नही तंत्रलोक है। इसका आरंभ उसी समय से हो जाता है जिस समय से व्यक्ति पूजा शुरू हुई। व्यक्तिपूजा से अभिभूत होने का फल यह होता है कि लोगशक्तियों को एक व्यक्ति में केन्द्रित कर देते है और उनका अपना कुछ नहीं रह जाता।"[12] भाई-भतीजावाद, तानाशाही, दल-बदल, सांप्रदायिकता, सत्तालोलुपता, चुनावी दौर, भ्रष्टाचार, नारेबाजी इत्यादि अनेक घिनौनी वृत्तियों ने अधिकार जमा लिया है।

राजनैतिक मूल्यों का ह्रास व्यक्ति के मानसिक दशा में भी बदलाव लाये है जो परिवेश के प्रति उनके आक्रोश में बदले है। ऐसी राजनीतिक विकृतियों को विवशता से स्वीकारना भी उनके लिए नियति बन गयी है।

3.1.2 आर्थिक परिस्थितियाँ

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जन जीवन के आर्थिक परिवेश में भी पर्याप्त बदलाव आया है। लंबी प्रतीक्षा के पश्चात् भारत आजाद तो हुआ लेकिन ढेर सारी समस्याओं का तोहफा लेकर। उन समस्याओं में सबसे मुख्य समस्या थी-अर्थ का असंतुलन। जिससे निपटने के लिए स्वतंत्र भारत में अनेक कदम उठाये गये। अखिल भारतीय आर्थिक कार्यक्रम समित का गठन किया गया आर्थिक दृष्टि से पिछडे लोगों को भूदान द्वारा भूमि दिलायी गयी, जमीन्दारी उन्मूलन एवं उचित कर की व्यवस्था प्रदान की गयी। वैयक्तिक, सामाजिक, पारिवारक जीवन मूल्य अर्थ पर आधारित

---

[12] मंचीय यात्रा, परिशिष्ट से, पृ.76

बन गया। यही अर्थ, स्वार्थ भावना के मूल में रह गया है जो भ्रष्टाचार, रिश्वतखारी, बेईमानी जैसी बुरी हालात का भी जनक बन गया है। आर्थिक स्थिति ने भौतिक और नैतिक मूल्यों के बीच एक बडा दरार का निर्माण किया है जो व्यक्ति के टूटन को आसान बनाया है। इसके साथ ही दूषित राजनीति का भी, देश की आर्थिक स्थिति के ह्रास का कारण है। "हमने समाजवादी व्यवस्था का संकल्प तो किया पिछले 46 वर्षों में गरीब लगातार गरीब होता गया और अमीर ओर अमीर होता गया। एक ओर जहाँ देश की 26 करोड जनता अति दरिद्रता में जी रही है, वहाँ दूसरी ओर मुट्ठी भर लोग कल्पनातीत ऐशो आराम की ज़िन्दगी जी रहे है।"[13] अंग्रेज़ों का शासन भारत की आर्थिक स्थिति को ओर खराब कर दिया था। उनके अपने उद्योग धंधों के लिए भारत को एक मंडी जैसा देखने लगा। इसीलिए ही स्वतंत्रता मिलने के बाद भी हम आर्थिक रूप से स्वतंत्र नही बन सके। स्वतंत्र भारत के सरकार द्वारा शोषितों और दलितों का उद्धार किया जाने लगा। भारत सरकार की ओर से विज्ञान-सम्मत और योजना बद्ध तरीके में कार्यान्वित करने को पंचवर्षीय योजनाओं को लागू किया। कृषि, उद्योग, बिजली, सिंचाई, शिक्षा, परिवहन, आवास, स्वार्थ, बेकारी, गरीबी जैसी लाखों मामलों का उचित समाधान ऐसी योजनाओं के अंतर्गत सुरक्षित रहा। पंचवर्षीय योजना देश की समृद्धि का एक बढता हुआ चरण न रह गया। योजनाओं की रकम नेता और कर्मचारी आपस में बाँट लेते और रिपोर्ट सरकार को सौंप देते। जिससे सरकारी प्रयासों के बावजूद भी आर्थिक समस्या ज्यों की त्यों बनी रही। दूसरा कारण यह भी था कि नेहरू ने उद्योग धंधों को अधिक बढावा दिया, उनकी औद्योगिक क्रांती ब्रिटिश अर्थ व्यवस्था का प्रतिरूप ही थी।

---

[13] धर्मयुग 3, नवंबर 1973, विश्वनाथ का लेख

जिससे पूँजीवाद दिनोंदिन विकसित होता गया और जनता गरीबी के दल दल में फँसती गयी। खेती जिस पर देश की सबसे बडी आबादी को निर्भर रहना था उसमें कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं हुआ। 1962, 1965, 1971 में हुई लडाइयों से उत्पन्न तनाव तथा असुरक्षा देश की आर्थिक स्थिति को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया था। सरकार की गलत नीतियों विषम आर्थिक व्यवस्था के कारण समाज में तीन वर्ग हुए- उच्चवर्ग, मध्यवर्ग और निम्नवर्ग। जिसके फलस्वरूप सामाजिक अराजकता पनपने लगी। अर्थ-व्यवस्था के डगमगाते ही मनुष्य की मनुष्यता समाप्त हो जाती है, नैतिकमूल्य नष्ट हो जाते है, व्यक्ति में कुंठा जन्म लेती है, वर्ग संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है। कुलमिलाकर आज का हमारा भारतीय परिवेश आर्थिक विषमताओं के शिंकजे में जकडा हुआ है। अर्थ पर मुट्ठी भर लोगों का ही अधिकार रह गया है, मध्यवर्ग, सर्वहारा और श्रमजीवी की संख्या बढती जा रही है। वह गरीबी और भुखमरी के साये में जीवन जीने को विवश है। भ्रष्ट शासन तंत्र भारत की आर्थिक स्थिति को कुचल देने में ही ज्यादा तत्पर थे। आम आदमी की आर्थिक स्थिति पतन की ओर बढ गयी है। बीमा और बैंकों के राष्ट्रीयकरण से देश की जनता को कोई विशेष लाभ नहीं रहा है। बेकारी, आर्थिक विषमता, अपराध हत्या, अपहरण, भ्रष्टाचार, पद लोलुपता और अनैतिकता आर्थिक क्षेत्र की विसंगतियों का परिणाम निकला है। "ज्ञान विज्ञान विकास योजनायें या प्रगति के गान उस समय असंभव और अस्वाभाविक प्रतीत होते है, जब बेरोज़गार नवयुवकों की बोलियाँ निराशा के अंधकार में जीवन ढो रही हो। जहाँ बेरोज़गारी किसी देश की आर्थिक दुर्गतियों, हीनताओं और दिवालियेपन का प्रतीक है।"[14] औद्योगिक विकास, नगरों वा महानगरों

[14] हिन्दी नाटक में समसामयिक परिवेश - डॉ. विपिनगुप्त, पृ.146

का विस्तार हुआ है जिसके कारण अनेक नई आर्थिक समस्याओं का भी प्रादुर्भाव हुआ है। कुल मिलाकर तत्कालीन भारतीय परिवेश आर्थिक विषमताओं के शिंकजे में जकडा हुआ है। अर्थ पर मुट्ठी भर लोगों का ही अधिकार रह गया है। सरकार की दलगत खोखली योजनायें एवं घोषणायें आर्थिक विपन्नता को दूर करने में असफल रही है। युग परिवेश की इस आर्थिक जटिलता तत्कालीन साहित्य के अंतर्गत देख सकते है।

3.1.3 सामाजिक परिस्थितियाँ

समाज परिवर्तनशील होता है। प्राचीन भारतीय समाज आत्मनिर्भर, धर्म द्वारा अनुशासित और संगठित था। समाज को सुचारू रूप में चलाने के लिए वर्ण व्यवस्था अस्तित्व में थी- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। प्रत्येक वर्ण अपने कर्तव्य और दायित्व से जुडा था। अंग्रेज़ों के आगमन के वक्त देश ग्रामीण समाज की व्यवस्था पर ही चालू था। सामाजिक समस्याओं का समाधान गाँव की पंचायत के ज़रिए ही होता था। जातिप्रथा तथा छुआछूत समाज के छाप थे। नारियों पर कडे नियंत्रण थे अनूचित धार्मिक चिंतन अंधविश्वास तथा कुरीतियों का पालन करने के लिए लोगों को विवश बनाये है। बालविवाह, अनमेल-विवाह, बहु विवाह, दहेज प्रथा, सती प्रथा व विधवा जीवन जैसी प्रथाओं से नारी जीवन अत्यंत दुस्सह तथा क्लिष्ट बना रहा। गाँधिजी जैसे नेताओं के प्रयत्न से राष्ट्रीय चेतना के प्रभाव से हालात में बदलाव आने लगा। स्वतंत्रता के बाद, भारतीय संविधान लागू होने के बाद ही नारियों की अवस्था में सुधार आयी है। सदियों से गुलामी की जंजीरों में जकड़ी हुई औरत अपने परिवेश में खुलकर, ताज़ा हवा में जीने लगी। शिक्षा प्राप्ती की सुविधा ने उनके जडता, अज्ञान को दूर करे समान अधिकार के लिए एक

क्रांतिकारी भावना को उत्पन्न किया। अस्तित्वबोध आत्मनिर्भरता नारियों के भाव बोध को बदलने लगे।

सामाजिक अस्तित्व के आधारभूत पारंपरिक मूल्यों के अस्वीकार ने एक नये भावबोध को जन्म दिया है। पुरानी मान्यताओं तथा विचारधाराओं को उपेक्षित करने की इच्छा समाज में प्रबल हुई है। यांत्रिक पाश्विकता, सामाजिक अराजकता, जर्जरित अर्थ व्यवस्था, युद्ध की विभीषिका पाश्चात्य संस्कृति का बढ़ता हुआ प्रभाव इत्यादि बाह्य परिवेश ने मनुष्य को बौना कर दिया। उधर ग्रामिण जीवन की नीरसता और कठोर नियंत्रित जीवन से तंग आकर लोग गाँव और खेत को भूलकर शहर की ओर आकर्षित हुए। अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त कर पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित कुछ लोग शहर में ही रहना पसंद करते थे। औद्योगीकरण के परिणाम स्वरूप ही- "हमारा नैरन्तर्य टूट गया है और ज़िन्दगी उखड़ गयी है, जीवन के अनगिनत तौर तरीके जिनकी जडे दूर तक धरती में गड़ी हुई थी, आज अंतिम रूप से टूट चुकी है।"[15] जडों के टूटने से मनुष्य हिल गया, आत्मियता गायब हो गयी, भाई चारे की भावना में दरार पड गयी और समाज में मूल्यहीनता एवं चारित्रिक अराजकता फैल गयी, क्रूर समय चक्र के बियाबान में मानवीय संवेदना सिसक रही थी। 'फ्रायडीयन' विचारधारा का भी स्पष्ट प्रभाव सामाजिक गतिविधियों को प्रभावित की है। व्यक्ति, परिवार एवं विवाह संबंधी दृष्टिकोण में परिवर्तन स्त्री-पुरुष संबंधों के दायरे को भी पूर्ण रूप से बदला दिया है। वैवाहिक जीवन से संबंद्ध रूढी मान्यताओं तथा परंपरागत बंधन जीर्ण-शीर्ण हो गये है। संयुक्त परिवारों का अपचय तथा अणुकुटुंबों का आविर्भाव सामाजिक दिशा को बदलने में मज़बूर कर दिये है। परिवार का विघटन एक

---

[15] कल्पना, नवलेखन विशेषांक- डॉ. बच्चन सिंह, पृ. 3

सामान्य अवस्था बन गई है। परिवार संबंधों में बिखराव, टूटते मानवीय संबंधों की व्याख्या, व्यक्ति चेतना या स्वातंत्र्य बोध वातावरण में हावी रहे। इन सबका असर व्यक्ति पर पडा है। डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल का कथन तत्कालिन सामाजिक स्थिति को स्पष्ट उजागर करती है- "हमारा वर्तमान समय और उसका यथार्थ एक भयंकर दृश्य प्रस्तुत कर रहा है- यहाँ मनुष्य एक ही साथ तीन युगों में जी रहा हैं। मध्ययुग, आधुनिक युग और भविष्य युग। हमारा गहन, तीव्र और प्रत्यक्ष संबंध मनुष्य के इस आधुनिक युग- उसके वर्तमान से ही, जहाँ वह अपने नामों से नहीं वरन, अपने उपनामों से जाना जाता है।"[16] पारिवारिक विघटन, पीढी संघर्ष, वैचारिक मतभेद, पारस्परिक समन्वय तथा सामंजस्य का अभाव आदि सामाजिक संतुलन को बिगाड दिये है।

उन्निसवीं शताब्दी के प्रारंभ में भारत की सामाजिक स्थिति और भी बदतर हो गयी। एक नई भौतिक सभ्यता की शुरूआत हुई। पश्चिमी दर्शन का प्रभाव, वैज्ञनिक उपर्याक्तियाँ, बेकारी जैसी बातों से युवा वर्ग के मनोव्यापार में समूल परिवर्तन आये है। नौकरी का अभाव महंगाई, महानगरीय जीवन की विसंगतियाँ, भौतिक सुख्रों की लालसा नई पीढी के अतृप्त जीवन के कारण रह गये। और इसी अतृप्ती के कारण ही वह अपने लक्ष्य तक पहुँचने को असमर्थ बन जाता है। इस संदर्भ में डॉ. दुबे का यह मंतव्य सठीक है- "आधुनिक युग विश्रंखला और बिखराहट का युग है। विश्व बिख्रर गया है- राष्ट्रों में, राष्ट्र टुकडों में और टुकडे बिख्रर गया है- इकाइयों में। उधर समाज भी बिख्रर गया है वर्ग, समूह, संस्था, यूनियन पार्टी में और अब वह भी नहीं रहा, रह गया है केवल व्यक्ति और व्यक्ति स्वयं अपने आप में अपने ही भीतर

---

[16] दूसरा दरवाजा: मेरा अपना रंगमंच - डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल, पृ.10

बिखर गया है। उसका मन बिखर-बिखर गया। चेतन अर्धचेतन-अवचेतन में विभक्त हो गया है। व्यक्ति चेतना बिखर गई-अहं से स्व में। सर्वत्र एक टूटन महसूस की जा रही है, केवल टूटन और कुछ नहीं। आज की बिखराहट- छिनराहट, आकुल-व्याकुलता और व्यापक अराजकता स्व को छोडकर किसी अन्य के नेतृत्व, किसी और के प्रतिनिधित्व में विश्वास नहीं करती। सारा युग व्यक्तिवादी बन गया है, व्यक्ति चेतनावादी हो गया है।"[17] विषैले धूरीहित वातावरण में, नये जीवन मूल्यों की तलाश, आधुनिक मानव के लिए आश्वास दिलाने की न थी। पूराने सडी गयी मान्यताओं को छोडकर नये स्वस्थ जीवन मूल्यों को अपनाने के लिए बेचैन नयी पीढी को पुराने पीढी के साथ संघर्ष करना पड रहा था। परन्तु साहस के अभाव में उसका व्यक्तित्व विघटित होता जा रहा था। उसमें अनास्था और क्षणवाद की प्रवृत्तियाँ जन्म लेने लगी। विघटन के इस युग में- "आज का नवयुवक असंतोष और अस्वीकार का साक्षात् प्रतीक बन गया है.. पुराने जीवन मूल्य खंडित हो चुके थे और उसके स्थान पर नये पुष्ट जीवन मूल्यों की स्थापना हुई थी जीवन के ऐसे वातावरण में नयी पीढ़ी का भ्रमित हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं।"[18] ऐसी अवस्था में व्यक्ति में द्वन्द स्थायी भाव का रहने लगा। सामाजिक विषमताओं का सबसे अधिक शिकार मध्यवर्ग हुआ। समाज में अपना स्थान बनाये रखने के कारण ही वह वर्ग दिन-प्रतिदिन खोखला होता जा रहा है। इसके कारण ही सामाजिक जीवन में आंतरिक टकराव की स्थिति उत्पन्न हो गयी। इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर भारत में, वैज्ञानिक उपलब्धियाँ,

---

[17] व्यक्ति चेतना और स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास - डॉ. पुरुषोत्तम डूबे, पृ.213

[18] द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. लक्ष्मी सागर वाष्णेय, पृ. 51

बौद्धिकता, भारतीय तथा पाश्चात्य संस्कृति का घुल मिलाव जैसे अनेक कारणों से सामाजिक व्यवस्था का ह्रास, एक नग्न सत्य रह गया है।

3.1.4 सांस्कृतिक/धार्मिक परिस्थितियाँ

19 वीं शताब्दी सांस्कृतिक दृष्टि से इतिहास में अधिक महत्वपूर्ण रही है अग्रेज़ों के आगमन, विज्ञान के आविष्कार, शिक्षा के नवीनीकरण भारतीय जनजीवन को प्रभावित किया। स्वातंत्र्योत्तर सांस्कृतिक परिस्थितियाँ भारत की और पाश्चात्य विचारधाराओं के संघर्ष की रही है। देश में जनवादी प्रवृत्तियों का विकास तथा, गाँधीवादी-समाजवादी विचारधाराओं का व्यापक प्रतिफलन भारतीय सांस्कृतिक बोध पर एक गहरा बदलाव लाये है। नयी वैज्ञानिक प्रगति के कारण उपभोक्ता संस्कृति का जन्म हुआ है। जिसके फलस्वरूप मनुष्य के आचार-विचार, जीवन दर्शन और लक्ष्य को पूर्णतः बदलकर, अर्थ प्रधान और आत्मकेंन्द्रित संस्कार की स्थापना की गयी है। तकनीकी-वैज्ञानिक विकास का दुष्परिणाम जीवन की यांत्रिकता तथा वैयक्तिक अस्तित्वहीनता का प्रादुर्भाव किये। व्यक्ति भीड का एक अंग मात्र बनकर रह गया है। 19 वीं 20 वीं सदी में विज्ञान के द्वारा परमाणु और जीवाणु अस्त्रों के आविष्कार ने मृत्यु भय से त्रस्त मानव के मानसिक दशा पर बुरा असर डाला है।

मूल्यों का विघटन स्वातंत्र्योत्तर भारतीय सांस्कृति परिवेश पर गहरा असर डाला है। डॉ. गोविन्द चातक ने जो लिखा है वह ठीक ही है- "स्वतंत्रता के पूर्व जीवन की एक दिशा थी। एक सुनियोजित लक्ष्य था और उस लक्ष्य की पूर्ती के लिए सेवा, संकल्प, त्याग और बलिदान के वांछित और आरोपित आदर्श थे। स्वतंत्रतात आई तो लक्ष्य प्राप्ति के साथ ही उससे संबंद्ध आदर्श भी आँखों के आगे से तिरोहित

हो गये। ....सारे परिवेश और जीवन मूल्य टूटते दिखाई देने लगे।"[19] प्रजातंत्र की दुहाई देनेवाले राजनेताओं तथा शासकों से ही उसका दुरुपयोग तत्कालीन मानव नियति पर गहरा असर डाला है। अंतर्राष्ट्रीय संपर्कों का भी, भारतीय सांस्कृतिक धरातल पर अमिट छाप है। अन्य देशों से जो वैचारिक आदान-प्रदान हमारी ओर से हुआ है वह अंतर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक विकास में हमें मदद किया है। विश्व बन्धुत्व की भावनायें पल्लवित होना भी हमारे सांस्कृतिक उन्नाव को उपयोगी सिद्ध हुआ है। सिर्फ पाश्चात्य और नवीन से आकर्षित होकर नहीं, बल्कि उपयोगितावादी दृष्टि को अपनाकर ही हमारी सांस्कृतिक उन्नति तथा अस्तित्व कायम रख्रती है। नाटो, सैटो तथा भयंकर शस्त्रों के विनाश समर्थन, चीन के साथ शांती समझौता, तारकंट समझौता, भारत की जियो और जीने दो नीति आदि ने भारत और विश्व के सभी राष्ट्रों से सांस्कृतिक बन्धुत्व स्थापित करने में मदद किया है। विश्व के ज्ञान-विज्ञान-कला, साहित्य संगीत का आदान-प्रदान भी हमारे लिए ख्रुशी की बात रह गयी है। भूगोलीकरण के परिणाम स्वरूप पूरे विश्व को एक छत के नीचे लाने की कोशिश रही है जो वसुधैवकुटुंबकम को सार्थक बनाती है। इस कारण से हमारी संस्कृति में पूरे विश्व का संस्कार घुल मिल-गया है। संगीत नृत्य, वेशभूषा, आभूषण, रहन-सहन, फैशन आदि का बदलाव हमारी संस्कृति को एकदम बदल दिया है और एक फैशनबुल संसार की ओर हमें ख्रींच रहा है।

फिल्मों तथा अंतर्जाल का अतिप्रसरण हमारे संस्कृति पर विशेषतः नयी पीढीयों पर गहरा प्रभाव डाला है। नारियों के प्रति दमन तथा उनपर अत्याचार इस युग की सांस्कृतिक गरिमा पर काला छाप डाला है। वर्तमान संस्कृति पर लोहया के

---

[19] टूटते परिवेश- डॉ. गोविन्द चातक, पृ.78

विचार सत्य ही है- "संस्कृति के नाम पर भारत में जिस वातावरण को देखा और भोगा उसे उन्होंने एक शब्द में नाम दिया-'कीचड'। यह कीचड हज़ारों वर्षों की सडी हुई उस परंपरा ने पैदा किया है जिसके सभी जीवंत तत्व या तो नष्ट हो गये या भला दिये गये। आज की स्थिति नितांत दारुण और असह्य है सारा देश जहालता, गरीबी, स्वार्थपरता में गर्क है।"[20] यद्यपि स्वतंत्रता प्राप्ती के बाद राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाते हुए शांती एवं तटस्थ नीति तथा सह अस्तित्व सहिष्णुता का अनुमोदन किया है फिर भी युगबोध को झुठलाया नहीं जा सकता, विश्वव्यापी सांस्कृतिक विघटन की चपेट में भारत भी आ गया है। इस प्रकार आलोच्यकाल में हमारी सांस्कृतिक मान्यतायें, पुरानी मान्यताओं से बहुत दूर जा चुकी है। मानसिक द्वन्द, भष्टाचार, सत्ता की राजनीति, शोषण, वैयक्तिक मानवीय संबंधों का अपचय आदि हमारे आधुनिक सांस्कृतिक पर्यावरण के लिया नये शब्द है जिसके कारण व्यक्ति समाज तथा राष्ट्र की सुगम प्रवाह में रोडा अटका रहे है।

3.2 कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों में चित्रित समस्यायें

एक रचना की गुणवत्ता का नाता उसके परिवेश बंध से माना जाता है क्योंकि परिवेश निरपेक्ष रचना कर्म अपनी गरिमा खो बैठती है। नयी मान्यताओं का साहित्य में महत्वपूर्ण भूमिका रही है जिनमें नाटक को ज़िन्दगी के निकट हम पाते है। हमारी नयी परिस्थितियों के जन्म से नाटक साहित्य भी नयी चेतनाओं की मशालें लिये खडा है। आज समष्टिगत तथा व्यक्तिगत सारी समस्याओं इतनी बढ़ गई है कि व्यक्ति इन सबसे जूझकर अपना व्यक्तित्व खो बैठा है। तमाम क्षेत्रों की यथार्थ समस्याओं का

[20] रविवार, 28 दिसंबर (1986) अंक 17, श्याम चरण दुबे

अंकन कर समकालीन नाटकों की महत्वपूर्ण विशेषता देख्र सकते है। कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों में युगबोध इसका उत्तम नमूना है। दोनों महिला नाटककार हिन्दी नाट्य जगत में अपने कालजयी नाटकों के ज़रिए, सामाजिक बोध को दिख्राने में सफल हुई है। इनके नाटकों में समाज की भिन्न समस्याओं को उजागर किया है।

युगीन संदर्भों का अंकन अन्य साहित्यकारों जैसे महिला नाटककार ने अत्यंत समग्रता तथा सजगता से किया है। उनके नाटक किसी विषयसीमा में कैद न रहकर जीवन के प्रत्येक अनुभव, मनुष्य के विसंगत परिवेश, अपने आसपास की सारी हरकतों को उभरने में सफल हुए है। भगवान जाधव के अनुसार- "केवल स्त्री और स्त्री से संबंधित प्रश्नों के बाहर महिला नाट्य लेख्रिकाओं का साहित्य-सृजन दिख्राई नहीं देता ऐसे आरोप से हिन्दी महिला दृष्टि संकुचित नहीं है। उनके नाटक सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, पौराणिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक चेतना से युक्त है। इतना ही नहीं बल्कि उनके नाटकों में समकालीन समस्याओं का विवेचनकाल के यथार्थ का समाज में व्याप्त विभिन्न विसंगतियों का देशभक्ति, राष्ट्रप्रेम, मानवतावादी दृष्टि, आतंकवाद जैसे विषयों का समायोजन हुआ है।"[21] कुसुम कुमार और नादिरा बब्बर के नाटक भी अपने समाज का आईना जैसा दीख्र पडते है। इनके नाटक तमाम परिस्थितियों को आत्मसान करके अपने युगीन संदर्भों को उजागर करने में सक्षम निकले है। इनके नाटकों की समस्याओं के विश्लेषण के पहले तत्कालीन परिस्थितियों का एक संक्षिप्त रूप प्रस्तुत करना समीचीन लगता है।

---

[21] हिन्दी महिला नाटककार - भगवान जाधव, पृ.35

ताकि उनके नाट्यसाहित्य के युगबोध तथा प्रासंगिकता आसानी से समझें। और यह भी मालूम होता है कि उनका साहित्य युग जीवन को स्वीकारने में सबसे आगे है।

3.2.1 राजनैतिक समस्यायें

राजनीति किसी भी राष्ट्र का एक सशक्त महत्वपूर्ण अंग है। देश के बाह्य पक्ष के विकास का दायित्व यदि राजनीति पर है तो आंतरिक पक्ष को जाग्रत करने का माध्यम साहित्य है। राजनीति की छत्र छाया में देश की उन्नति अवनति की नींव पडती है। राजनीति में नैतिकता का ह्रास ने स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक क्षेत्र में नयी समस्याओं को पैदा की है। जनसेवा के स्थान पर उसका ध्येय जन कल्याण न रहकर स्वकल्याण रह गया है। अर्थ लोलुपता ने पुराने-पुण्य आदर्शों को तेज़ी से विघटित किया है। जिसका परिणाम स्वरूप अवसरवादिता, स्वार्थपरता, सत्तामोह आदि नये शब्दों का जन्म हुआ है। डॉ. चन्द्रशेखर ने लिखा है कि- "भ्रष्ट शासन, जन जाती तंत्र लुच्छी व्यवस्था, दोहली सिहाय धर्मिता, बेहया शक्ति का वंशानुगत ध्रुवीकरण, यह है हमारा कुल राजनैतिक पर्यावरण।"[22] ऐसी दूषित राजनैतिक अवस्था का अंकन समकालीन नाटककारों के नाटकों में चित्रित है। यहाँ कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों में चित्रित राजनीतिक समस्याओं का विश्लेषण करने की कोशिश है।

3.2.1.1 राजनैतिक नेताओं की स्वार्थता

समाज सेवी हो या राजनेता-अपने स्वार्थ लाभ ही उनका परम लक्ष्य रह गया है। बदलते मूल्य परिवेश में नैतिक मूल्यों का अपचय सबसे तेज़ी से राजनैतिक नेताओं में पाये जाते है। अपने राष्ट्र तथा समाज के कल्याणमय भविष्य के लिए कोशिश करने को जो बाध्य है, उसके द्वारा अपने स्वार्थेच्छा की पूर्ती का अथाह

---

[22] हिन्दी नाटक और लक्ष्मी नारायण लाल की रंगयात्रा - डॉ. चन्द्रशेखर, पृ.14

परिश्रम ही होता है। डॉ. महीपसिंह ने लिखा है- "हमने देखा, कल तक त्याग और बलिदान की दुहाई देते और देशभक्ति के तराने गानेवाला नेता वर्ग सत्ता मिलते ही भूखे भेडियों की तरह धन और यश कमाने पर टूट पडा है। चारों तरफ एक अजीब सी हफरी-तफरी है। कोई भी मौका चूकना नहीं चाहता, समय रहते सभी इतना एकत्र कर लेना चाहते है कि गद्दी न रहने के बाद भी किसी प्रकार की चिंता न रहे।"[23] स्वार्थता और लालच की मूर्तियाँ रह गये ऐसे नेता अब सेवा करना भूल गये है। ऐसे एक राजनीतिक नेता को कुसुम कुमार के 'सुनो शेफाली' में मिल पाता है। कपट राजनेता सत्यमेव दीक्षित अपने बेटे बकुल का शादी, इसलिए दलित शेफाली से कराना चाहता है कि आगमी चुनाव में उसे दलितों से ज्यादा वोट मिले। लेकिन शेफाली सत्यमेव की कपटता को स्पष्ट रूप से समझती है कि वह समाज से ज्यादा खुद को प्यार करता है। शेफाली कहती है-

> "ठीक है अम्मा चली जाऊँगी...उसका बाप आये तों तू साफ साफ कह देना...आपकी सहूलियत बनना चाहते है, मुझे समाज सेवक साहब। ऊपर से जताते है ऐसे जैसे हम पर कोई उपकार कर रहे हो।"[24]

प्यार-शादी जैसे अनमोल मानवीय प्रवृत्तियों को भी अपनी स्वार्थ सिद्धी के लिए उपयोग करनेवाला राजनीतिक आज के ज़माने का श्राप है। 'सुनो शेफाली' के एक संदर्भ में सत्यमेव मिस साहब से शेफाली से शादी के लिए मंजूर करवाने की विनती लेकर खडा होता है जो कमीने निचले राजनीतिज्ञों के दाव वेच का स्पष्ट नमूना है।

---

[23] विद्रोह और साहित्य - देवन्द्र इस्सर, पृ.35

[24] सुनो शेफाली - कुसुम कुमार, पृ.40

चुनाव के पहले ज्योतिषी मन्नन आचार्य के पास सत्यमेव जाता है, जहाँ मन्नन उस पर व्यंग्य करता है मन्नन-

> "वधु यानी आपकी समाज सेवा और वर जिसके हाथ में आप अपनी कन्या का हाथ देने जा रहे है...आपका यह चुनाव देवता। समाज-सेवा वेड्सस चुनाव देवता! दोनों मिलकर करेंगे देश सेवा। खायेंगे दीक्षित और कंपनी खूब फलमेवा।"[25]

समाजसेवा को अपने लक्ष्यपर पहुँचने की सीढी मानने वाला स्वार्थ, कपट राजनेता समाज की दुरवस्था का नियामक बन रहा है।

3.2.1.2 चुनाव कपटता का मापतौल

स्वतंत्र भारत में चुनाव प्रजातंत्र का नींव रह गया है। लेकिन आज चुनाव का उपयोग झूठे-कमीने नेताओं को सत्ता पर बिढाने का एक मापतौल रह गया है। "मैं देश की बात जानता हुँ। मनुष्य भ्रष्टाचार दुराचार और अनाचार की जिस सीमा तक जा सकता है, उस तक निर्वाचनों मे हमारे मत दाता और उम्मीदवार पहुँच जाते है। यह स्थिति प्रजातंत्र की जडों को खोद रही है।"[26] निष्पक्ष शासन की चाह अब तो त्यागने का वक्त है क्योंकि निकम्मे और लालच चुनाव के पहले मुँह मांगे वादे और इनाम देकर मतदाता को अपने स्वांग में खींचकर निर्वाचन में ज्यादा वोट कमाते है और सत्ता पर भरे रहते है। 'सुनो शेफाली' में सत्यदेव ब्राह्मण है और समाज सेवक है। वह दलितों की सेवा इतनी करती है कि दलित लडकी शेफाली को अपनी बहु

---

[25] सुनो शेफाली - कुसुम कुमार, पृ.32

[26] समय और हम - जैनेन्द्र कुमार, पृ.208

बनाकर, अपने अधिकार की कुर्सी निश्चित करना चाहता है। मुँहमागे वादे देकर जनता को ठगनेवाले समाज सेवकों तथा राजनीतिक नेताओं की सूची में सत्यमेव को भी जोड सकते है। शेफाली से उनका प्यार, अपने राजनीतिक उन्नती के लिए था। खुद शेफाली उनके और बकुल के आदर्शों पर व्यंग्य करती है- शेफाली-

> "बहनों और भाइयों...अपना वोट हमें देकर अपना भविष्य उज्ज्वल बनाइए यह बात आज यहाँ इस जीप में मौजूद हरिजन लडकी कर रही है। इस लडकी को मैं आज ही अभी ब्याहकर ला रहा हुँ।...गरीबी को हटाया जाना इस देश के लिए जितना ज़रूरी है उतना ही हरिजनों का उद्धार भी। अब तक इस दिशा में हमने जितने प्रयास किये, वे सब उसफल रहे...अछूतोद्धार की इस दिशा में सभी प्रयत्न असफल होते देखकर मैने निराशा की स्थिति में पहले इस हरिजन लडकी से प्रेम किया फिर शादी कर ली...लीजिए भाइयों और बहनों अब तो आप हमें ही देंगे न अपनी कीमती वोट।"[27]

लोकतांत्रिक व्यवस्था के इस वर्तमानयुग में राजनीति से जूझनेवालों का लक्ष्य सिर्फ स्वार्थ लाभ रह गया है। अपनी कथनी और करनी का अंतर नेताओं द्वारा चुनाव के पहले और बाद दीख्र पडते है। श्रीमती विनोदजैन की राय में-"नाटक में राजनेताओं के छल-छदम का रूप और प्रत्येक स्थिति में लाभ उठाने की इच्छा का विकृतरूप उभरता हुआ दिखाई देता है।जो राजनीतिक चेतना को प्रस्तुत करता है।"[28] प्रजातंत्र के वर्तमान माहौल में कपट राजनेताओं का राज, राष्ट्र के भविष्य को तक अंधकार में डुबाने को पर्याप्त रह है।

---

[27] सुनो शेफाली - कुसुम कुमार, पृ.54

[28] स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में सामाजिक चेतना- श्रीमती विनोद जैन, पृ.51

3.2.1.3 राज-समाज नेताओं का दोहरा व्यक्तित्व

अंतर्विरोधों के वर्तमान माहौल में मनुष्य के व्यक्तित्व को दोहरापन एक परिवेशगत याथार्थ्य है। समाज सेवा का लक्ष्य परम पवित्र दृष्टिकोण से परखा जाता था एक ज़माने में। राज-समाज सेवियों के कर्म इतना सुतार्य थे कि उनपर शंका की कोई गुँजाइश तक न था। लोककल्याण की चरमसीमा के रूप में समाजसेवा का मानना थी। लेकिन वर्तमान स्वार्थी परिस्थितियाँ नेताओं के रहन-सहन में तक परिवर्तन लाये है कि वे दिन में कुछ कहते है लेकिन रात में कुछ बदलके करते है। कुसुम कुमार के 'संस्कार को नमस्कार' में ऐसे नेता को मिल पाते है। नाटक में संस्कार चंद दुष्चरित्र और कमीने है जिसकी समाज सेवा है नारी उद्धार (नारी शोषण)। नारी उद्धार को माध्यम मनाकर अपने जटिल कामवासना का शमन संस्कार चंद करता रहता है। नारी केन्द्र के संचालन के पीछे उनका लक्ष्य वहाँ की कुआरियों का यौन शोषण। दिन में वह निरीह लडकियों को आदर्श भरी वाणियाँ देता है लेकिन रात को कायापलट करके एक दुराचारी का वेश धारण करता है। नाटक में शक्ति-विद्या जैसी अबोध बालिकाओं पर संस्कार का बलात्कार मानवीय मूल्यों के ह्रास की सूचना है। संस्कार चंद का दोहरा-घिनौना रूप समाज सेवा के संदर्भ में प्रासंगिक रह जाता है। कामोबेन जैसे पिट्ठुओं को अपनी सेवा में नियुक्त करने की उनकी रीति समाज सेवियों के ढोंग और अधिकार भाव का स्पष्ट उदाहरण है। नाटक में सूत्रधार का कहना बहुत समीचीन लगता है-

> "हमारा हीरो जो आदर्शवासियों के लिए बकवास है..आम जनता के लिए बहु कोटियों का उपहास है..बुद्धि-जीवियों के लिए ख़ास कुछ नहीं आम बात है।"[29]

---

[29] संस्कार को नमस्कार- कुसुम कुमार, पृ.48

3.2.1.4 आदर्शहीन नेता

आदर्शहीन नेताओं की बाढ आज की राजनीति की अपनी विशेषता है। वे कहते ज्यादा, करते कुछ है। ऐसी एक अवस्था में राजनीति के महान आदर्शों से हटकर वे केवल, थोथी कहनी मात्र रह जाती है। गणेश मंत्री के अनुसार- "व्यापक सामाजिक लक्ष्यों से विमुख, सिर्फ सत्ता के भोग तक सीमित रहनेवाली राजनीति में दल कमज़ोर काँच की तरह तडपते रहने है। आज देस में भोग की राजनीति का ज़ोर है, जो कोई मर्यादा नहीं जानती।"[30] राजनेताओं के थोथे कथनों की गहनता का अभाव सर्वसम्मत है। कुसुम कुमार के 'संस्कार को नमस्कार', 'सुनो शेफाली' आदि नाटकों में ऐसे आदर्शहीन नेताओं को खुलकर व्यंग्य किया गया है। 'संस्कार को नमस्कार' में संस्कारचंद आदर्शहीन राजनेताओं के प्रतिरूप है। वह भाषण तो ज्यादा देता है लेकिन करनी में ना के बराबर है।

"संस्कार : भाषण वहाँ नहीं और दो जगह देगना है, एक जगह देश की ख्याद्ध समस्या पर बोलना है, दूसरी जगह युवा वर्ग की आत्मनिर्भरता की ज़रूरत है बतलाना है, शाम को हमारी उस दवाई की व्यवस्था कर दीजिए, आज पेट में विंड कुछ ज्यादा है।

कामोबेन : आज चिंता न करें...हर चीज़ की उचित व्यवस्था हो जायेगी।... वैसे गाय के घी, बादाम, असली कातिकी शहद की व्यवस्था तो पहले से हो चुकी है।"[31]

---

[30] देश पीछे कुर्सी सबसे पहले- गणेश मंत्री, धर्मयुग, सितंबर 1979

[31] संस्कार को नमस्कार- कुसुम कुमार, पृ.35

यहाँ युवाओं की आत्मनिर्भरता पर भाषण देने वाला संस्कार, शोषक के रूप में अपना अस्तित्व देता है। अन्न की चिंता में दुखित नेता कीमती खाद्य चीज़ों का ही इस्तेमाल करते है।

'सुनो शेफाली' का सत्यदेव गाँधीवादी विचार धारा के उन्नायक के रूप में समाज सेवा में डूबा है। लेकिन उनके दिल में हरिजन सेवा का भाव तनिक भी नहीं है। गाँधीजी का प्रिय भजन, 'वैष्णव जन तो तेनेहि कहिए पीर पराई जाणेदे'...तक उन्हें असह्य रह लगता है। "दुर्भाग्यवश स्वतंत्रभारत की राजनीति ही भ्रष्ट हो गयी है। अब महात्मा गाँधी का आदर्श तो रह नहीं गया, उसके स्थान पर बहती गंगा में हाथ होने की प्रवृत्ति बढ गयी है।"[32] हरिजनोद्धार के नाम से समाज सेवक के पदपर विराजना ही सत्यमेव का लक्ष्य था। केवल नाम कमाना और सत्ता को प्राप्त करना जीवन का परम-लक्ष्य माननेवाले ऐसे नेताओं का निष्कासन देश के भविष्य के लिए ज़रूरी है। देश को भूलकर, खुद को मात्र लक्ष्य करके जीनेवाले ऐसे नेताओं का राज ही वर्तमान माहौल में उपस्थित है।

3.2.1.5 रिश्वतखोरी

रिश्वत हमारे समाज में बहुत गहराई तक पहुँच गई है। रिश्वतखोरी से समाज में नुकसान दो तरह से होता है। एक अयोग्यता की व्यापकता, दूसरा पैसे का दुरुपयोग। धनार्जन की राहों में रिश्वतखोरी सबसे आगे है जो भौतिकवादी संस्कृति की उपज है। "बाहरी दिखावा, अपव्यय, झूठी प्रतिष्ठा के कारण अधिकांश व्यक्तियों को आर्थिक संकट का सामना करना पडता है। ऐसे व्यक्ति भ्रष्ट आचरण का शिकार बनते है। इसीलिए रिश्वतखोरी, मिलावट, कालाबजारी, सिफारिश आदि अनैतिक

---

[32] द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास- डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णै, पृ.45

साधनों का फैलाव सर्वत्र दिखाई देता है।"[33] छोटे कर्मचारी से लेकर बडे अधिकारी तक रिश्वतखोरी के खेल में उलझे हुए है। 'दिल्ली ऊँचा सुनती है' में पैंशन कार्यालय की कर्मचारियों की मानसिकता रिश्वतखोरी की बुरी नीति को उजागर करती है। जैसे-

"मिस्टर. ए : यहाँ साला आकर कुछ पेश करें तब न! ...रिश्वत मिलेगी और यहाँ हुँ। भूखे नंगों का दफ्तर है यह...सब कानी-कौडी का महताज वाले...खुद पेंशन पर गुज़ार करने वाले उनसे रिश्वत् मिलेगी?"[34]

'सकुबाई' में लाश के नाम पर भी रिश्वत लेने की इच्छा आदमी की थोथी मानसिकता का दृष्टांत है। 'सकुबाई' में वासंती की मृत्यु होती है तो सकु पति के साथ लाश लेने अस्पताल जाती है लेकिन रिश्वत लेकर ही लाश उनके हवाले करते है।

"सकुबाई -'अ..वासंती..उमर पैन्तीस साल कमाठी पुरा में धन्धा करती थी। पंखे से लटककर भर गयी ससाली।' जब उसने साली बोला तो मुझे इतना गुस्सा आया कि मैं उसका मुँह नोंच लूँ..फिर बोला इतनी रात को उस कमरे में जाने से डर लगता है। ठंडी में सारे मुर्दे अकड जाते है। फिर एक दूसरे को धक्का देते...मा तू जा....SS तू जा...SS पाकिया तू जा करके टठ्ठा मसखोरी करने लगे...। यश्ववन्त ने जोकर दो सौ रुपये उनके हाथ में रख दिये। तब जाकर वासंती की बाँडी पाते...और सफेद कपडे में लपेटकर सामने डाल दी।"[35]

---

[33] हिन्दी नाटकों में समसामयिक परिवेश - डॉ. विपिन गुप्त, पृ.152

[34] छः मंच नाटक दिल्ली ऊँचा सुनती है - कुसुम कुमार, पृ.178

[35] सकुबाई - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.45

रिश्वत आम आदमी के जीवन पर दोषी सिद्ध हुए है और हो रहे है। सरकार द्वारा इसके विरुद्ध किसी कार्यवाही न लेने के कारण-समाज का हाल अधिकतम बिगड गया है। जनता की आँखों पर पट्टियाँ बांधते ऐसे कुकर्मों का, आज बोलबोला रह गया है।

3.2.1.6 प्रशासनिक भ्रष्टाचार

राजनीतिक भ्रष्ट व्यवस्था के उपजों में भ्रष्टाचार और लालफीताशाही सबसे खतरनाक है। ये वर्तमान समाज के अभिन्न अंग रह गये है। भ्रष्टाचार की समस्या आम आदमी पर ज्यादा पडती है क्योंकि वे ही ऐसी कुरीतियों के फल भोगते है। उनके सामने अफसर और कार्यालय के कर्मचारी जिसकी लाठी उसकी भेंसवाली नीति अपनाते है।

> "हमारा प्रशासन प्रायः भ्रष्ट हो चुका है। भ्रष्ट प्रशासन से तात्पर्य है-ऐसा प्रशासन जिसमें छोटे से छोटे तथा बडे से बडा कार्य सिफारिश, रिश्वत तथा चाटुकारिता से होता है। चाटुकारिता मानवीय दुर्बलता है। प्रत्येक मनुष्य चाहता है कि दूसरा उसकी चापलूसी करे उसके सामने हाथ जोड़े। प्रशासन के हाथ में तो राज्य की शक्तियाँ होती है। अतः प्रशासन का इन क्षेत्रों से बचे रहना कठिन है। जहाँ पहले न्याय तथा ईमानदारी का राज्य होता था वहाँ आज झूठ धोखेबाजी, हिंसा तथा भ्रष्टाचार का शासन है।"[36]

ऐसी अवहेलना करने वाले आशय कुसुम कुमार के 'दिल्ली ऊँचा सुनती है' नाटक में देख पाते है। नाटक में माधोसिंह का पैंशन सरकारी दफ्तरों की अकर्मण्यता तथा

---

[36] युगबोध और हिन्दी नाटक - डॉ. सरिता वसिष्ठ, पृ.216

भ्रष्ट व्यवस्था से स्थगित है। जीवित माधोसिंह को मृत रेखांकित करनेवाली भ्रष्ट सरकारी व्यवस्था कार्यालयीन भ्रष्टाचार तथा लालफीताशाही का स्पष्ट उदाहरण है।

यहाँ नौकर भ्रष्टाचार न पासकता है अतः दुखित है। ज़िन्दगी में कुछ ज्यादा कमाने की महत्वाकांक्षा ही भ्रष्टाचार का जनक है। व्यवस्था और अत्याचार के गठबंधन में भ्रष्टाचार जैसे नये शब्दों से परिचित हो रहे है हम। कुसुम जी के 'ओम-क्रांती-क्रांती' में शैक्षिक भ्रष्टाचार का उत्तम उदाहरण मिल पाता है। कॉलेजों तथा विश्विविद्यालयों में शिक्षित के स्थान पर अशिक्षित ही नियमित होता है। धन की शक्ति से ऊँचे पद को प्राप्त करने के लिए वे प्रयत्न करते है जिसके फलस्वरूप भ्रष्टा व्यवस्था की स्थापन होती है। जान-पहचान तथा सिफारिश के बलबूते पर होनेवाली ऐसी नियुक्तियों के पीछे धन की ऐयाशी ही है। 'सुमन और सना' में अफसरों की मनमानी शरणार्थियों के लिए बडी तकलीफ देती है। सरकार तथा अन्य संस्थाओं द्वारा शरणार्थियों को भेजनेवाले मदद, अफसरों की लालच हडपती है। शरणार्थी शिबिर की अवस्था को आँख्रों देख्री पहचानने के लिए आये लोगों से वहाँ के लोग कूद पडते है।

"यूसुफ : किधर है सामान मेडम? सुनते तो हम भी बहुत है कि सामान आया है सामान आया है। मगर हम तक तो नहीं पहुँचा।

* * * *

औरत : बारह हज़ार लोग रहते है इस कैंप में जिन्मे कम से कम छः हज़ार औरतें है जिन्हें हर महीने माहवारी होती है तो कौन सा कपडा लगाती है उन दिनों यही गंदे हाट-फाट...। बहुत सामान आया है, लेनेवाली कम पड गये है।"[37]

---

[37] सुमन और सना- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.49

विषलिप्त मानव मन बुराई से बुराई की ओर छलांग लगाकर जाते है जिसके कारण आम जीवन तकलीफ में जूझने की नियति लेकर ज़िन्दा है।

3.2.1.7 भारतीय सेना का अंतर्द्वन्द

भारत जैसे विकासोन्मुख राष्ट्र के गौरव को शिखर तक पहुँचाने में भारतीय सेना की भूमिका कम महत्वपूर्ण नहीं है। भारतीय फौज अपने कर्तव्य पर अटल अडिग रहकर भारत के यश को विश्व में फैलाने के लिए अपनी सारी खुशियों को इस्तीफा लेते है। 'आपरेशन क्लाउड बर्स्ट' नादिरा ज़हीर बब्बर का नाटक है जो भारतीय सेना की गरिमा को खींचने में सक्षम निकला है। भारतीय फौज अपने कर्तव्य पर अटल-अडिग रहकर भारत के यश को विश्व में फैलाने के लिए अपनी सारी खुशियों की इसीफा लेते है। 'अप्परेशन क्लाउडबर्स्ट' भारतीय सेना की गरिमा का दस्तावेज है साथ ही सैनिकों का अंतरद्धन्द भी नाटक में स्पष्ट है। अपने पवित्र रिश्तों का बलिदान करके दिल की इच्छाओं को त्याग करके वे भारत के लिए कर्मरत है। उल्फावालों पर आक्रमण के लिए तैयार गेयकवाड और उनकी सैनिकों की चिंताएँ और मानसिक उल्लझन नाटक की मूल में है।

उनके दिल में भी माँ का प्यार पाने की उमंग, परिवार के साथ रहने की अथाह चाह है। कैं. कंग-

> "माँओं का दिल भी कमाल का होता है। कितना भी उनसे लड लो झगड लो। फिर भी दूसरे दिन पूछती है। बेटा रोटी खाली।...और रोने से मेरी माँ का कोई जवाब नहीं...छुट्ठी में घर जाता हुँ तो रोती है छुट्टी से वापस आता हुँ तो रोती है। फोन करता हुँ तो रोती है। फोन नहीं करता तो रोती है।"[38]

---

[38] आपरेशन क्लाउडबर्स्ट - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.28

भिन्न संस्कार, भाषा तथा क्षेत्र के आदमियों का एक मिलावट ही सेना में होती है। फिर भी एक साथ रहकर अपनी ईमानदारी और कर्तव्यपरायणता से भारत को संरक्षित करने में वे एक रह जाते है। अपने मुल्क की गरिमा भारतीय सेना का धरोहर है। राठी जैसे बदचलन सैनिक सेना का बदनाम है तो भी में गेयकवाड और बाकी सैनिकों के माध्यम से सेना का जोश नाटक में उभारा है। आम आदमियों के मन में सेना के प्रति आदर उपजाने में ऐसे प्रसंग उपकारी है। नाटक के एक पात्र मोरोमी के पूर्वज्ञान को बदलकर उसमें भारतीय सेना के प्रति श्रद्धा भाव जगने में भी वे काबिल हुए है।

3.2.1.8 आतंकवाद

आतंकवाद एक विश्वव्यापी घटना है जिसकी जडें आरूढ है। यह विश्वव्यापी घटना है जो आम तौर पर राज्य के खिलाफ कम तीव्रता वाले युद्ध रूप में परिभाषित किया जाता है। आतंकवाद की व्यापकता पर सोचे तो यह पूरे विश्व में एक वृक्ष जैसे फैला है। कश्मीर, असाम आदि राज्यों पर इसका असर कुछ ज्यादा दीख पडते है। इसका असर विस्तृत रूप से होता है और आम जनता पर ही इनका दूषित फल होता है। नादिरा ज़हीर बब्बर के 'सुमन और सना' में कश्मीर के आतंकवाद से पीडित लोगों की दयनीयता का स्पष्ट एहसास है। यह देश की समरसत्ता पर बडा असर डालता है। कश्मीर जैसे राज्यों में धर्म पर आधारित आतंकवाद ज्यादा फैली है। इसके फलस्वरूप अनेक आदमी बेघर हुए और बेआसरा रह गये। कितने बच्चे माँ खोते है। आतंकवाद एक ऐसा मिशन है जो अपने लक्ष्य पर इतना अँधा हुआ है कि 'इनसानियत' नाम के चीज़ को खो बैठे है। नाटक में अमीना का मानसिक दबाव- एक माँ के दर्द की पराकाष्ठा है।

अमीना-"कहते थे कि तेरे बेटे को जाहाद के लिए ले जा रहे है। क्या एक माँ की गोद उजाड देने का नाम जेहाद है? जेहाद का मतलब होता है मजलूस के हक के लिए लडना...यह जेहाद नहीं..."[39]

जेहाद के परिणाम स्वरूप ही भारत में कुछ समय पहले आतंकवादियों के हमले ज्यादा हुई थी। डॉ. दूदा कश्मीर के आतंकवाद का एक और शिकार है जो अपनी पत्नी को खो बैठती है। भारत जैसे एकता और अखंडता में रहनेवाले देश की एकता को नष्ट करने की कोशिश उनका लक्ष्य रह जाता है। नाटक में मु. अली का बेटा आतंकवादी बन जाता है और हरिकौल से मुहम्मद अली की दोस्ती में दरार लाने की कोशिश भी करता है।

नादिरा जी 'आपरेशन क्लाउड बर्स्ट' में असम के उल्फा आतंकवाद पर केंन्द्रित समस्यायें है। असम के आतंकवाद युनाईटेड लिबरेशन फ्रंट ऑफ असम (ULFA) है। इसकी स्थापना 1971 में हुई है जिनके प्रमुख लक्ष्य है समाजवादी सरकार की स्थापना तथा असम को स्वतंत्र पद प्राप्त होना। प्रस्तुत नाटक में 'आतंकवाद के पनपने के लिए समाज में पोषक तत्व ज्यादा है' इसी तत्व को उभारा है। आतंकवाद पनपने के कारणों पर भी नाटक इशारा करते है। नाटक में कंग-

"वो तो होगा ही, उनकी स्टेट में आके हम यहाँ बढते हुए आतंकवाद को दबाने की कोशिश कर रहे है। और हम सब जानते है कि किसी भी प्रदेश का आतंकवाद वहाँ की जनता के सपोर्ट के बिना नहीं पनपता। So obviously वहाँ का तो चच्चा-चाप्प हमारा दुश्मन और उनका informer है।"[40]

---

[39] सुमन और सना - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.24

[40] आपरेशन क्लाउडबर्स्ट - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.16

असम के आतंकवाद का दमन भारतीय सेना के लिए मुश्किल काम है क्योंकि वहाँ के लोग ऐसे आतंकवादियों को राज्य के संतुलन केलिए ज़रूरी मानते है। उनकी राय में सरकार के कुकृत्यों से आम जनता को बचाने वाले ये उल्फा वाले आतंकवादी न रहकर उनकेलिए उपकारी है। नाटक में मोरोमी कहती है-

> "तुम जिन्हे आतंकवादी बोलते हो उन्हें हम क्रांतिकारी कहते है... अगर दो पल के लिए भी तुम्हारे सीने में आसामीज़ दिल आ जाए और फिर जब तुम ले बातें सुनो कि आसाम की जनता पर क्या-क्या जुल्म हुए..। तो तुम्हारा भी कलेजा फट जायेगा।"[41]

इसी से आतंकवाद पनपने और स्थापित होने के कारण नादिरा जी स्पष्ट किया है। संस्कार की ओर से आतंकवाद का रोकधाम सरकार की निगरानी में ही संभव है। आतंकवाद रूपी दौधारी तलवार के सामने जीना काल के मुँह पर जीने के समान है। मानव के दिल में प्यार जगाने का संदेश ही इसके विरुद्ध सक्रिय मानी है। मेधा शक्ति और हृदयतत्व की समरसता का अभाव ही आतंकवाद जैसे विनाशक तत्वों के प्रेरणा तत्व है।

3.2.1.9 पूर्वोत्तिर राज्यों की समस्यायें

पूर्वोत्तिर राज्यों की समस्यायें नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटक 'आपरेशन क्लाउड बर्स्ट' में प्रमुख विषय रही हैं। आतंकवाद की समस्याओं में कश्मीर के अलावा पर्वोत्तर राज्यों के नाम भी प्रमुख है। भारत का एक हिस्सा जो पूर्वोत्तर भारत के नाम से जाना जाता है जो स्वतंत्रता के बाद किसी-न-किसी कारण से सदा

---

[41] आपरेशन क्लाउडबर्स्ट - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.48

अशांत है। यहाँ तो केन्द्र सरकार से तथा, भारत के अन्य क्षेत्रों से आये लोगों के विरुद्ध सदा संघर्ष कायम रहता है। तनाव के मुद्दे कभी भाषा के नाम पर है तो, कभी क्षेत्रीय स्वायंत्तता पर या कभी बंगलादेश से आये शरणार्थियों के नाम पर है। पूर्वोत्तर भारत का असम सबसे अस्थिर राज्य है। यहाँ के मामलों में पुलिस का हस्तक्षेप होता है लेकिन मामला बहुत जटिल होता जाता है। बदलते सरकारों की नीतियाँ उनके द्वारा असह्य बन गया है। पूर्वोत्तर राज्यों की ओर भारतीय सेना का दमन उनके प्रतिशोध में बदलने लगे और आतंकवादियों द्वारा भारत से पूर्वोत्तर राज्यों की मुक्ति चाहते है। नादिरा ज़हीर बब्बर के 'आपरेशन क्लाउडबर्स्ट' नाटक के द्वारा असम जैसी पूर्वोत्तर राज्यों की यथार्थ हाल प्रकाश में आता है। नाटक में मोरोमी आतंकवादियों के पक्ष में है क्योंकि वे अपने राज्य को सरकी नीति दिलाने की कोशिश में है। जैसे मोरोमी-

> "इंडिया में किसी को मालूम भी है कि नार्थ ईस्ट में कितनी स्टेट पडती है। असाम और मेघालय, शिलौंड और इंम्फाल कहाँ है? कौन किसकी राजधानी है? आज़ादी के बाद किसी गवर्नमेंट ने इस तरफ ध्यान ही नहीं दिया। देखा भी नहीं है। इसलिए हमें हिन्दुस्तान से आज़ादी चाहिए।"[42]

भारत जैसे विकासोन्मुख देश का भविष्य ऐसी स्पर्धाओं में डूब जाने की गुंजाइश विद्यमान है। लेकिन सरकार द्वारा असम की जनता पर उचित निगरानी न की जाती है। मोरोमी की राय में आसाम के लोग तो सदियों से गरीब और शोषित रह रहे है।

---

[42] आपरेशन क्लाउडबर्स्ट - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.44

"मोरोमी :... तुम लोग आसाम में अपने मतलब के लिए आये हो। ये तो जग जाहिर उसी तरह जैसे अमेरिका इराक में घुस गया उसका भी दावाथा कि वो इराक में आतंकवाद को खत्म करने गया था। रासायनिक और जैविक हथियार ढूँढने गया था। तो क्या हुआ मिल गये हथियार चल गया अमेरिका वापस। नहीं नहीं वही पर डटा हुआ है।"[43]

ऐसे राज्यों की ओर सबका ध्यान आकर्षिता करने में नादिरा जी का सशक्त हस्ताक्षेप है। प्रस्तुत नाट्य रचना असम के मामले की गंभीरता यहाँ बहुत अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है।

3.2.1.10 शरणार्थियों की समस्या

सांप्रदायिक दंगे, आतंकवाद या किसी प्राकृतिक विक्षोभ हो शरणार्थी बनना बहुत तकलीफ की बात है। शरणार्थियों की समस्या एवं उनके जीवन में उत्पन्न करुणा एक दर्दनाक सच्चाई है। "कैसा होता है पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपने जमाये घर-आंगन की उष्ण-आत्मीयता से अकस्मात, दिन-को-दिन के अंदर हमेशा-हमेशा के लिए उखडकर बूढे-बाप, बीमार-पत्नी, अबोध बच्चों सहित अकस्मात, बियाबान में निरूद्देश्य एक बिस्तर दो गठरियाँ लादकर चल पडना। अख़बार में जो तस्वीर छपती है, जिसके परिचय में लिखा होता है 'शरणार्थी या विस्थापित' यह क्या कभी उस भयानक ट्रेजेड़ी का एक अंश भी बता पाती है, जो इनके जीवन में घटती है।"[44]

---

[43] आपरेशन क्लाउडबर्स्ट - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.43

[44] युद्ध यात्रायें, ग्रंथावली-७, पृ.290

एक व्यक्ति के लिए शरणार्थी बना ज़िन्दा-रहने पर अवज्ञा पाने के जैसा है। व्यक्तियों का अस्तित्व खतरे में डालने वाली ऐसी अवस्था से शरणार्थी जूझती है। जमी-जमायी घर-गृहस्थी और बन्धुओं को छोडकर एक अलग जगह विस्थापित होने की ट्रेजेडी एकदम भयावह है। नादिरा जी के 'सुमन और सना' में कश्मीर के आतंकवाद तथा गुजरात के सांप्रदायिक दंगों में घर-परिवार नष्ट हुए कुछ निरीह व्यक्तियों की ज़िन्दगी का ज़िक्र है जो शरणार्थी शिबिर में नरकसमान जीवन बिता रहे है। अफसरों की उपेक्षा भरी नीति से ऊबे हुए वर्ग रह जाते है वे।

> "राजेश... और ये शरणार्थी : शरणार्थी क्या होता है। अपने ही देश में हम शरणार्थी हो गये? एक तो घर से बेघर हो गये। ऊपर से तुम लोग कुत्तो की तरह दुत्कारो।"[45]

अपने ही मातृभूमि में दूसरा नागरिक बने हुए ऐसे लोगों की मनोदशा चिंताजनक है। नाटक में सब अपने आर्त मनोदिशा से बहुत दयनीय दीख्र पडते है। ऐसी अवस्था से भला वे देशत्याग ही चाहते है। जैसे-

"शाहिद : तुम समझते नहीं हो यूसुफ भाई बात छोटे-मोटे टेंशन की नहीं है। बात इज्जत से जीने की है। बात हमारी खुद्दारी की है। लेकिन बस अब बहुत हो चुका। अब मैं नहीं रहूँगा इस मुल्क में। ये मुल्क हमारी काम के नौजवानों को बरबाद कर रहा है।"[46]

---

[45] सुमन और सना - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.27

[46] सुमन और सना - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.57

शरणार्थी बनने से व्यक्ति अपनी अस्मिता खो बैठती है जिसके कारण सब कहीं उपेक्षा भरी नीति ही उसे मिलती है। और ऐसी एक अवस्था में वह जीना भी नहीं चाहता है। ऐसी एक समस्या आज के संदर्भ में ज्यादा समीचीन ठहरती है।

3.2.2 आर्थिक समस्यायें

स्वातंत्र्योत्तर भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के कार्यान्वयन से आर्थिक स्थिति सुधरी थी। लेकिन अनैतिकता, असामाजिकता, अराजकताओं ने आम आदमी को ऐसी हितावह योजनाओं से वंचित कर दिया और वर्ग भेद ओर भी स्पष्ट हुआ। आर्थिक संकट भारतीय जन जीवन को ग्रसित हुआ है। ऐसी समस्याओं का असर आम आदमियों पर ही ज्यादातर पडा है जो समाज के निचले स्तर पर जीते है। बेरोज़गारी बढने लगी। आर्थिक विपन्नता के कारण समाज के नैतिक मूल्यों पर भी स्पष्ट असर पडा है। इसका सजीव चित्रण कुसुम कुमार तथा नादिरा ज़हीर बब्बर तोनों ने अपने नाटकों के ज़रिए प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। तमाम आर्थिक संकटों के बीच पिसते हुए आम आदमी के दर्द को इनके नाटक उभारते है।

3.2.2.1 अर्थाभाव

आम आदमी के लिए पैसे का अभाव एक ऐसी अवस्था है जिसमें उनका जीवन यापन कठोर संघर्ष में परिणत होता है। अर्थाभाव व्यक्ति के मानसिक संतुलन को भी बिगाड सकते है। व्यक्ति अपनी परिस्थिति के प्रतिकूल तैरने केलिए विवश होता है। कुसुम कुमार के 'दिल्ली ऊँचा सुनती है' में माधसिंह अर्थाभाव की चरम सीमा पहुँचता है। पेंशन के मामले की देरी, पैसे की तंगी आदि से माधोसिंह का जीवन नरकतुल्य बना जाता है। पैसे के अभाव में जीवन का रौनक तो कहीं खो

जाता है। कुसुम कुमार के 'रावणलीला' में कलाकारों की आर्थिक विपन्नता स्पष्ट रूप से चित्रति है। रावण की भूमिका में कर्तार सिंह आर्थिक पराधीनता का स्पष्ट उदाहरण है। वह वेतन बढाने की माँग संचालकों के सामने निरंतर रखते है लेकिन अंत में मंच पर असली रावणलीला दिखाकर अपनी मज़दूरी बढाने में विजयी होता है।

"हा हाँ मैं हुँ रावण
शूर बहादूर, दिलेर बलवान,
तेजस्वी हुक्मरान?
मेरा नाम का यश
मेरी गदा की उस
जानता ज़मीनो आसमान
मेरा सच सिर्फ मेरे दाम, मेरे दाम!
साल में पाँच दिन मिलता है मुझे बस
यह पार्ट टाईम काम, काम, काम"[47]

आम आदमियों के लिए पैसा एक अनमोल चीज़ है जिसका अभाव उनकी बुनियादी ज़रूरतों को भी सफल करने में नाकामयाबी देती है। कुसुम जी का 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' में नायक पवन अर्थाभाव के कारण एक मासूस चेहरे के पृथ्वी पर जन्म होने के पहले कुचलने को चाहता है। पत्नी सुषमा से वह अपनी आर्थिक विवशता खुलकर बताता है और दूसरे बच्चे का गर्भच्छेद करने को कहता है। अर्थाभाव एक व्यक्ति की चाहतों को भी कुचलकर फेंकते है।

---

[47] रावणलीला - कुसुम कुमार, पृ.104

नादिरा ज़हीर बब्बर के सकुंबाई, दयाशंकर की डायरी आदि नाटकों में भी अर्थाभाव का दर्दनाक हालत मिलता है। 'सकुंबाई' में सकु का परिवार पैसे की तंगी के कारण ही बंबई जैसे महानगर में काम के लिए आता है और घरेलू नौकर के रूप में जीवन बिताता है। एक व्यक्ति की नियति में उसकी कष्टता भी लिखी हुई है जिसके कारण दयाशंकर जीवनपर्यत एक मामूली क्लर्क बनकर रह जाता है। दयाशंकर अर्थाभाव के कारण अपने को समाज में निकृष्ट मानते है और ऊँचे पद पर रहते की महत्वाकांक्षा भी रखता है। साहब की बेटी से उनकी शादी इसलिए न होती है कि वह गरीब है।

"दयाशंकर : क्या मज़ाक है? सिर्फ इस वजह से कि कोई अमीर है? बहुत बडा इंडस्ट्रिललिस्ट है। तो हर अच्छी चीज़ उसे मिलेगी?"[48]

ऐसे हम मानते है कि अर्थाभाव के कारण मानव अपने अस्तित्व तक को गिरवी रखकर जीता है। इसी कारण से कभी-कभी मानवीयता का अभाव समाज में देख सकते है। इस प्रकार कुसुम कुमार और नादिरा बब्बर दोनों अर्थाभाव से उत्पन्न विभिन्न समस्याओं को अपने नाटकों के माध्यम में उजागर किया है।

3.2.2.2 महंगाई

महंगाई वर्तमान समाज की एक खतरनाक समस्या है। महंगाई मात्र एक समस्या नहीं है अपितु अनेक समस्याओं की जड है। महंगाई के कारण दैनिक उपयोग की वस्तुओं के दाम इतने बढ गये है कि आम आदमी की शक्ति उन्हीं को जुटाने में

---

[48] दयाशंकर की डायरी- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.43

लगी रहती है। जीवन में बुनियादी ज़रूरतों तक की अप्राप्ती आदमी को जीवनयापन की मुश्किल की ओर थकेलती है।

> "महंगाई से पिसता और भौतिक लालसाओं की पूर्ती से जूझता व्यक्ति अंदर ही अंदर टूट रहा है। बढती अस्मिता की पीडा को झेल रहा है।"[49]

कुसुम कुमार के 'दिल्ली ऊँचा सुनती है' नाटक में माधोसिंह महंगाई के कारण दिल्ली जैसे महानगर से गाँव की ओर पलायन करता है। माधोसिंह जैसे एक मध्यवर्गीय आदमी के लिए दिल्ली जैसा नगर बहुत तकलीफ देती है क्योंकि वह सेवा निवृत्त है तथा वहाँ जीने के लिए ज्यादा पैसे की ज़रूरत है। महंगाई आम आदमी के जीवन को कष्टपूर्ण बना देती है। इस बात पर पती-पत्नी दोनों बहुत परेशान है। माधेसिंह से पत्नी कहती है-

> "हालात कौन से अच्छे हो गये? हालात अच्छे होते तो किसे पडी थी शहर छोडकर यहाँ आने की? शहर छोडने की बडी हुए है ना तुम्हारें मन में..? पर जब शहर में थे, तब भी तो तुम खुश नहीं थी? चौबीसों घंटे पैसे की तंगी...आठों पहर सिक्के की कमी शहर में और था क्या?"[50]

पैंशन का अभाव, और कोई धर्नाजन का उपाय न होना तथा अपनी दवाइयों का खर्च आदि माधोसिंह की बेटी नीति को आत्महत्या की ओर खींचती है।

कुसुम जी के 'रावणलीला' में रावण की भूमिका निभानेवाला कर्तारसिंह, पैसे की तंगी के कारण अभिनय का दाम बढाने की माँग करता है। उनकी राय में

---

[49] वीरेन्द्र जैन के साहित्य में आधुनिक युगबोध - डॉ. रामकुमार वर्मा, पृ.228

[50] छः मंच नाटक, दिल्ली ऊँचा सुनती है - कुसुम कुमार, पृ.169

अभिनय की तारीफ मात्र में काम न चलेगा। अपने दैनिक जीवन बिताने के लिए पैसे की ज़रूरत है। वह महंगाई के बारे में यों बताता है-

> "डंडा चला है तो पाँच रूपये किलो का प्याज दो दिन में तीन रुपये किलो का प्यास दो दिन में तीन रूपये किलो दस रुपये किलो का चावल एक दिन में सात रूपये किलो।"[51]

गरीबों का यह कथन बहुत ही चिंतोद्दीपक है। हर हाल में ऐसी अवस्था का फल गरीबों पर ही पडता है।

इस प्रकार नादिरा ज़हीर बब्बर के 'सकुंबाई' नाटक में भी महंगाई की समस्या देखने को मिलता है। अमीरों की दुनिया में गरीबों की अभावग्रस्त जीवन का कोई अंत न होता है। अपनी बीमारी के शमन के लिए दवा ख़रीदने में भी वे कष्टता सहती है। अपने पति को एड्स की बीमारी से बचाने के लिए वह दवाइयाँ ख़रीदने के लिए बहुत तकलीफ सहती है। दवा की महंगाई के कारण सकु अपने को कोसती है। जैसे-

> "मैं तो कहती हुँ गरीब के बीमार होने से अच्छा है उसका मर जाना। कितनी-कितनी महंगी दवायें...सुइयाँ। डाक्टर की फीस, तपासी का ख़र्च...फिर फल-फ्रूट। ताकत की गोली। जूस...। रोज-रोज आना जाना। बस का किराया...। ऊपर से छुट्टी कहाँ से करेंगे बाबा।"[52]

---

[51] रावणलीला - कुसुम कुमार, पृ.85

[52] सकुबाई - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.57

वर्तमान समाज में पीडित मानव बहुत ज़्यादा है। अतः 'दयाशंकर की डायरी में' भी महंगाई की चर्चा मिलती है। उनके सारे नाटकों में महंगाई का ज़िक्र है जो यथार्थ के धरातल पर बुने है। बंबई के शहरों में रहनेवालों की तक्लीफें 'दयाशंकर की डायरी' में स्पष्टतः मिलती है। जैसे-

"दयाशंकर चार-पाँच हज़ार रुपये में बंबई में आजकल होता क्या है? कमरे का भाडा, खाने के पैसे, ट्रेन का पास, साबुन, तेल कभी-कभार दारू..."[53]

दैनिक जीवन को बिताने में आम आदमी की कष्टता का मूल कारण महंगाई है।

3.2.2.3 गरीबी

गरीबी एक ऐसा कलंक है जो मनुष्य को मनुष्य तथा मानवता से दूर कर देता है। स्वतंत्रता प्राप्ती के समय भारत की जितनी जनसंख्या थी, उतने लोग आज गरीबी रेखा के नीचे सपना जीवन व्यतीत कर रहे है। "गरीबी से तात्पर्य एक ऐसे अभावग्रस्त जीवन से है जो समाज के सामाजिक आर्थिक कुसमायोजन से उत्पन्न होता है, तथा जिसके फलस्वरूप व्यक्ति अपनी तथा अपने आश्रितों की अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ होता है।"[54]

'दिल्ली ऊँचा सुनती है' नाटक में माधोसिंह पेंशन के अभाव में छः महीने तक, पैसे की तंगी में जीता है। उसे गरीबी का जीवन जीना पडता है कि उसके घर का चूल्हा तक बंद हो जाता है। अपनी गरीबी से तंग माधोसिंह कहता है-

---

[53] दयाशंकर की डायरी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.20

[54] सामाजिक विघटन- डॉ. गोपाल कृष्ण अग्रवाल, पृ.287-288

"माधोसिंह- एक बार मरकर फिर से ज़िन्दा होना इतना आसान नहीं होता और फिर इस ज़माने में सिर्फ सांस देने का मतलब जिन्दा रहना थोडे है। पैसा चाहिए पैसा! पैसा आदमी को मारता है। पैसा जिलाता है।"[55]

'रावणलीला' में गरीबी का सच्चा रूप मिलता है। रावणलीला में कर्तार सिंह गरीबी से जूझता एक कलाकार है। इसलिए ही वह अपनी मज़दूरी बढाकर देने की माँग करती है। 'सकुबाई' में सकु अपनी गरीबी के कारण गाँव छोडती है और मुंबई आकर घरेलू नौकर का काम करती है। 'दयाशंकर की डायरी' में दयाशंकर क्लर्क की नौकरी से अतृप्त है। उनकी राय में मुंबई जैसे महानगरों में जीने को उनका वेतन अपर्याप्त है।

"दयाशंकर सब सोचते है कि भाई बंबई में काम करता है तो न जाने वहाँ से क्या लेकर आयेगा। किसी को क्या पता हम बंबई वालों पर क्या बीतती है। मैने बडी मुश्किल से बीस हज़ार रूपये कर्जा लिया।"[56]

गरीबी सामाजिक क्रूरता का एक ओर पहलू है।

3.2.2.4 अमीरों का खोखलापन

समाज एक ऐसा ढाँचा है जिसके अंतर्गत, चिर पुरातन काल से ही अमीर-गरीब का भेदभाव सुशक्ता रूप से कायम है। आर्थिक स्थिति की असमानता ही ऐसी स्थिती का उत्तर दायी है। अमीरों की ऐयाशी और मनमानी का तो इतिहास आँखों

---

[55] छः मंच नाटक, दिल्ली ऊँचा सुनती है - कुसुम कुमार, पृ.191

[56] दयाशंकर की डायरी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.35

देखी है। जिसका शेषभाग वर्तमान स्थिति को भी ग्रसित है। धन की अधिकता के कारण जो वर्ग अमीर कहलाते है उन्हीं की मनमानी की कोई सीमा न रह जाती है। 'सकुंबाई' में सकु द्वारा अमीरों का पोल खोलती है। अमीर खन्ने की पत्नी पार्टी में, मेमसाब का नेकलेस चोरी करती है। सकुंबाई द्वारा वह पकडी जाती है। उनकी राय में-

> "अरे बडे आदमी का वाइफ वैसा बडप्पन भी तो आना चाहिए और फिर अमीर होना बडप्पन की गारंडी भी नहीं।"[57]

धन का बाढ अमीरों को संस्कारहीन बनाते है। व्यक्ति की हैसियत अमीरी या गरीबी में न होकर उसकी नेकी और इनमानियत में है। सकुबाई मेमसाब के बेटे को दूध पिलाने को मुश्किल सहती है जैसे कोई तनतोड काम करने पर होती है। उस बच्चे के लिए दूध का कोई मूल्य नहीं है।

दयाशंकर की डायरी में एम.एल.ए साहब का घर और वातावरण दयाशंकर को एक महल जैसा प्रतीत होता है। वहाँ ड्राइंग रूम का फव्वारा देखकर दयाशंकर कहता है-

> "बडे लोगों की बडी बातें, हमारे यहाँ तो बाथरूम में भी पानी नहीं होता, इनके हाल में भी पानी चलता है।"[58]

---

[57] सकुबाई- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.55

[58] दयाशंकर की डायरी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.39

'जी जैसी आपकी अर्जी' में वर्षा को जिग्नेश छेडता है तो वह उनकी मनमानी पर प्रतिशोध करती है। जिग्नेश जैसे अमीर अपने पैसे की बलबूते पर मनमानी करता है और संस्कार खो बैठता है। बडप्पन दिखाने में ही वे कामयाब रह रहे है वर्षा कहती है-

> "किस चीज़ में माडर्न होते है ये लोग? विचारों से... ज़िन्दगी की जो बूनियादी चीज़ें है, मान्यताये है, उनमें? नहीं..सिर्फ कपडों में, सिगरेट में, शराब में, फ्री सेक्स में..."[59]

जिग्नेश जैसे अमीर लडकों की मन्मानी का शिकार बन जाती है वर्षा पोटे। उनकी मनमानी अमीरी से उपज है इसलिए ही दूसरों को दमन करनेवाली भी रह जाती है।

3.2.2.5 औद्योगीकरण

औद्योगीकरण संबंधी समस्यायें अपनी व्यापकता से अधिक प्रासंगिक है। इस प्रक्रिया ने सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। इसका दूषितफल सामाजिक तौर पर बहुत अधिक उभर आये है। मकानों की कभी आवास-व्यवस्था को बिगाडती है जिसका फल भोगना पडता है गरीब, निर्धन लोग। कुसुमकुमार के 'दिल्ली ऊँचा सुनती है' नाटक में ऐसा विषय उभरता है। माधोसिंह दिल्ली शहर में अपनी पत्नी के साथ था। लेकिन सेवानिवृत्ति के बाद वे वहाँ छोडकर आने को मज़बूर हो जाते हैं। वह कमला से कहता है-

---

[59] जो जैसी आपकी मर्जी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.24

"शहर छोडने की बडी हूक है ना तुम्हारे मन में ...? पर जब शहर में थे, तब भी तो तुम ख़ुश नहीं थी? चौबीसों घंटे पैसे की तंगी... आठों पहर सिक्के की कमी शहर में और था क्या?"[60]

नादिरा ज़हीर बब्बर का 'सकुबाई' नाटक में भी प्रस्तुत विषय मिल पाता है। सकु और माँ बुंबई की ओर आती है और नानी के घर रहती है। मुंबई के उस घर का चित्रण इस कथन से स्पष्ट समझ सकते है-

"एक ही कमरा था। कमरे पर माला डाला हुआ था, माले पर बडे मामा की छोटी लडकी, मैं और मेरी आई, छोटे मामा, नितिन वगैरह सोते थे।"[61]

ऐसी एक तंग परिस्थिति में ही सकु का बलात्कार मामा द्वारा होता है। 'जी जैसी आपकी मर्जी' में सुल्ताना पति से निष्कासित होने के कारण फुटपाथ में ज़िन्दगी करती है। क्योंकि उसके पास शहर में किराये पर रहने को पर्याप्त पैसा न था। 'दया शंकर की डायरी' में दयाशंकर और दोस्त एक ही कमरे में थे क्योंकि कमरे का भाडा ज्यादा था। दयाशंकर-

"लेकिन फिर भी मैं इसलिए जारहा था कि कुछ पैसे एडवांस मिल जाये। क्योंकि इस महीने बीस-इक्कीस तारीख को ही सारे पैसे ख़तम हो गए। चार-पाँच हज़ार रुपये में बंबई में आजकल क्या होता है?"[62]

---

[60] छः मंचनाटक, दिल्ली ऊँचा सुनती है- कुसुम कुमार, पृ.169

[61] सकुबाई - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.29, 30

[62] दयाशंकर की डायरी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.20

दया शंकर जैसे मामूली क्लर्क के लिए ऐसे शहर में जीना बडी कठिन होता है क्योंकि औद्योगीकरण आम आदमी के लिए बोझिल बन जाता है।

3.2.2.6 नौकरों का शोषण

शोषण व्यवस्था समाज में अति पुरातन काल से ही रूढमूल है। नौकरों का शोषण एक आम बात रह गयी है। पूँजीपती वर्ग चिरकाल से नौकरों का शोषण करता रहता है। नादिरा जी के 'सकुबाई' नाटक में सकु एक घरेलू नौकर है जो शोषित है। वह घर में काम के लिए रहती है वहाँ की मेमसाब घर का सारा काम उनके ऊपर छोडकर जाती है। इस पर उसका विरोध यों प्रकट करती है- सकु-

> "ये देख्रो ये लोग घर की ऐसी हालत करते जाते है जैसे कि कोई बम फट गया हो। और ये लोग जैसे बैठे थे, वैसे ही उठकर भाग गये। अरे बाबा अपना ही घर है न।"[63]

घर में नौकरानी होने के कारण सारे दायित्व से अपने को मुक्त समझ कर उनका शोषण करनेवाले समाज के वरेण्य वर्ग पर यहाँ करारा व्यंग्य है। यह एक सामाजिक सच्चाई है। ऐसे नौकरों का शोषण हमारी सामाजिक स्थिति में बहुत व्यापक रह गया है।

3.2.3 सामाजिक समस्यायें

समाज एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें समान, असमान तथा भिन्न तत्व पाये जाते है। कई इकाइयों तथा वर्गों में बाँटा गया समाज मानव के योग-क्षेम को बुनियादी तत्व मानता है। सामाजिक मूल्यों का बदलाव आधुनिक साहित्य के

---

[63] सकुबाई- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.17

दृष्टिकोण में भी बदलाव लाया है। सामाजिक मान्यताओं की विसंगतियाँ समाज के हर चीज़ पर असर डाला है तथा उसके परख भी नये मापदंडों से किया जाता है। "दिख्रावे की होड में आज का व्यक्ति प्राकृतिक सुख-सुविधाओं के स्थान पर भौतिक उपलब्धियों से जीवन स्तर को नापता है।"[64] समकालीन ज़िन्दगी का प्रामाणिक दस्तावेज़ बनने के लिए नाटक बाध्य है। आलोच्य नाटककारों के नाटकों में समाज की इन स्थितियों को ऐसे ही अंकन करने की कोशिश हुई है। मानव जीवन की विसंगतियों और विद्रूप स्थितियाँ तथा सामाजिक कारगुज़ारियों को इनके नाटक प्रस्तुत करते है। तथा रूढ़ियों और परंपराओं में जकडे हुए समाज में परिवर्तन लाने की दिशा में भी कोशिश हुई है।

3.2.3.1 पारिवारिक विघटन

सांप्रतिक युग व्यक्ति चेतना की स्वतंत्रता से परिपूर्ण होने के कारण ही पारिवारिक मूल्यों में बिख्रराब देख्र सकते है। "समाज शास्त्र की दृष्टि में परिवारों में किसी भी प्रकार की अव्यवस्था ही पारिवारिक विघटन है।"[65] 'व्यक्ति' केन्द्रित समाज होने के कारण समाज की उस लघुतम सार्थक इकाई, अर्थहीन बन जाता है- तदफलस्वरूप उसका सामाजिक-पारिवारिक जीवन में टूटन ही मिलते है, शिवप्रसाद सिंह के अनुसार- "सच तो यह है कि भारतीय परिवार भी देश के सामान ही, एक अजीब कश्मकश, घुटन, अलगाव, दिशाहीनता, ईष्या, कलह और तू-तू मैं-मैं के दौर से गुज़र रहा है।"[66] एक सामाजिक संस्था के रूप में जहाँ परिवार संरक्षित था, वहाँ

---

[64] युगबोध और हिन्दी नाटक - डॉ. सरिता वशिष्ठ, पृ.225

[65] सामाजिक विघटन - डॉ. सत्येन्द्र त्रिपाठी, पृ.104

[66] आधुनिक परिवेश और नवलेख्रन - शिव प्रसाद सिंह, पृ.36

परिवार के परंपरावादी नींव हिल गया है। पारिवारिक विघटन व्यक्ति के टूटन को भी कारण रह जाता है। कुसुम कुमार का नाटक 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' में पारिवारिक विघटन का स्पष्ट रूप मिलता है। नाटक का नायक पवन अपने पिता से इसलिए अलग है कि वह ऊँचे पद पर थे तथा अपनी इच्छाओं को उस पर थोपने का प्रयास भी करता है।

"डॉ. चतुर्वेदी : तुम गलतियाँ करने से कब बाज आओगे? कब नाव किनारे लगेगी तुम्हारी? कब कोई अच्छा फैसला ले सकोगे तुम भी?

पवनः आपने कभी मुझे समझने की कोशिश नहीं की। मै सच कहता हुँ बाबू....आपने कभी मुझे समझने की कोशिश नहीं की।"[67]

चतुर्वेदी अपने बेटे की उन्नती को लक्ष्य करके, उसे सदा मशविर देते रहते है लेकिन पवन उससे ऊब जाता है। तदफलस्वरूप दोनों के बीच अलगाव खडा होता है।

3.2.3.2 दांपत्य का विघटन

भारतीय संस्कृति में विवाह एक महत्वपूर्ण संस्कार है। विवाह के द्वारा अलग परिस्थितियों के दो व्यक्तियाँ, पति-पत्नि के रूप में एक साथ जीने लगते है। पति-पत्नि के बीच का संबंध स्वस्थ तथा सुदृढ होने से ही, दांपत्य का वातावरण शांतपूर्ण होगा। लेकिन प्रायः ऐसी अवस्था है कि पति-पत्नि के बीच प्यार के बदले घृणा और

[67] पवन चतुर्वेदी की डायरी - कुसुम कुमार, पृ.225

विद्वेष का बोलबाला है। कुसुमकुमार के 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' में पवन और सुषमा शादी के पहले ही प्यार में थे, लेकिन शादी के बाद उनमें प्यार की कमी रह जाती है। दूसरे बच्चे का जन्म, अर्थिक पराधीनता तथा पवन का इला से संबंध आदि कई कारणों से दोनों में झगडा होती रहती है पवन और सुषमा हमेशा लडती रहती है।

"सुषमा : कमीने...कुत्ते...कसाई।

पवन : हाँ, हाँ मैं कसाई। तेरे साथ जो जियेगा, वह कसाई नहीं तो क्या मसीहा बनकर जियेगा?

सुषमा : मर क्यों नहीं जाता कमीने? तेरी मौत पर मैं घी के दिये जलाउँगी।"[68]

नादिरा ज़हीर बब्बर के जी जैसी आपकी मर्जी में पति-पत्नि का टूटन एक प्रमुख विषय है। नाटक में वर्षा के तथा, सुल्ताना, बबली टंडन के संदर्भों में दांपत्य का विघटन, हम देख पाते है। शोभा काकू की ज़िन्दगी पती की दूसरी शादी से बिगड जाती है और वह आत्महत्या भी करलेती है। सुल्ताना की शादी छोटे उम्र में होती है और पति का दमन सहती रहती है। पत्नी को निचला देखनेवाला अकील, लडकियों को जन्म देने के कारण सुल्ताना को हमेशा कोसता रहता है। उनके बीच पती-पत्नी के स्वच्छ रिश्ता की कमी थी। बबली टंठन भी पति के गैर संबंध से अपने परिवार को टूटा देखा पाती है। उनकी राय में हर हाल में पति को संरक्षित करना पत्नियों का दायित्व रह जाती है। बबली और अमनदीप के बीच का वैवाहिक

---

[68] पवन चतुर्वेदी की डायरी- कुसुम कुमार, पृ.50

संबंध में कृत्रिमता ही देखने को मिलती है। पति का नकला प्यार वह समझ पाती है। बबली पूछती है-

> "क्यों मर्दों को ये हक होता है कि वो सैकडों affair करें लेकिन फिर भी फरिश्ते जैसे बने रहे?"[69]

अनिता से अमनदीप का संबंध बबली जानती है तो वह टूट पडती है। फिर भी समाज के आगे पति-पत्नी का स्वस्थ रिश्ता कायम रखने को वह तैयार होती है।

3.2.3.3 विवाह एक तमाशा

पुरानी विचारधारा में विवाह धार्मिक एवं पुनीत जन्म-जन्मांतर का बंधन था तो आज वह केवल नारी पर होने वाला शोषण रह गया है। विवाह एक सामाजिक और सांस्कृतिक संतुलन को बरकरार रखती है। "नर-मादा का पारस्परिक आकर्षण सहज स्वाभाविक है ही, प्रबलतम भी है। मानव समाज ने इस भाव को संयमित और उदात्तीकरण करने के लिए विवाह संस्था की सृष्टी की है।"[70] लेकिन ऐसी स्पष्ट मान्यताओं से विवाह आज बहुत दूर निकल चुका है क्योंकि शादी संबंधी पवित्र धारणायें धूमिल हो चुकी है। आज के इस भूमंडलीकरण के युग में ऐसा होना आश्चर्य की बात नहीं है। कुसुम कुमार के 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' में पवन-सुषमा दंपतियों की रिश्ता वैवाहिक असफलता का स्पष्ट एहसास देते है। पवन अपनी प्रेमीका सुषमा को शादी करता है लेकिन जब आर्थिक विषमता तथा अन्य मानसिक क्लेश आता है तब उनका पारिवारिक जीवन बिगड जाता है। इस अवसर पर ऐसा

---

[69] जी जैसी आपकी मर्जी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.40

[70] समसामायिक हिन्दी नाटक- बहु आयामी व्यक्तित्व- डॉ.सुन्दरलाल कथूरिया, पृ.73

लगता है कि विवाह एक तमाशा रह गया है। कुसुम जी का 'सुनो शेफाली' भी शादी की निस्सारता को प्रस्तुत करती है। शेफाली को विवाह लिए प्रेरित करने वाला सत्यमेव दीक्षित अपने बेटे के उज्ज्वल भविष्य के लिए नहीं बल्कि अपनी पदोन्नती के लिए कोशिश करता है। उनका लक्ष्य अच्छी तरह समझनेवाली शेफाली इस शादी से पीछे हटती है-शेफाली-

> "तू क्या उन्हें इतना भोला समझती है अम्मा? वह क्यों शादी करना चाहते है मुझसे-अभी..इसी..वक्त ..मैं खूब समझती हुँ.. बाप बेटा अपनी समाजसेवा की हथेली पर सरसों जमाना चाहते है...एक हरिजन लडकी का उद्धार किया उन्होंने- यही कह-कहकर अपने लिए ज़िन्दाबाद के नारे लगवायेंगे..और मैं? ...उनके विज्ञापन का एक वाक्य बनी..."[71]

लेखिका ने यहाँ विवाह संबंधी मान्यताओं को धिक्कारनेवाले मनोभावों पर करारा व्यंग्य किया है।

नादिरा ज़हीर बब्बर का 'जी जैसी आपकी मर्जी' में पुरानी शादी संबंधी मान्यताओं पर आक्रामक दिखाई देती है। उसकी शादी एक अपरिचित व्यक्ति से, वह चाहती भी नही है। बबली टंटन-

> "कैसा होता है। ना..एकदम ऐसा माहौल फिर एक दिन अचानक बिलकुल अन्ज़ान आदमी से शादी तय कर देते है। और उस आदमी को हक होता है कि वो हमारे साथ चाहे करे।"[72]

---

[71] सुनो शेफाली- कुसुम कुमार, पृ.38

[72] जी जैसी आपकी मर्जी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.35

अपना सर्वस्व खोकर, त्यागकर जीने पर शादी नारी के लिए एक मज़बूरी बन जाती है। एक अन्जान जगह पर अन्जान व्यक्ति के साथ रहने की नियती में वह एक कठपुतली मात्र बन जाती है। इसी नाटक में सुल्ताना अपने पति के घर में पीडित-दमित ज़िन्दगी जीने लगती है। सास और पति के क्रूर दमन का शिकार होकर वह ज़िन्दगी काटती है। एक बात समझ सकते है कि विवाह संबंधी पुरानी मान्यताओं का ह्रास देखते है जो नारी को केवल अपने संकुचित दृष्टिकोण का शिकार मानता है। ऐसे अवसर पर विवाह बच्चों का खेल रह जाता है।

3.2.3.4 तलाक की समस्या

तलाक की समस्या वर्तमान संदर्भ में एक गंभीर विषय है। पति-पत्नि के बीच के मनमुटाव तो, पहले समझौता में बदलते थे कि आज तलाक एक भीषण समस्या बन रह गयी है। "तलाक विवाह का वैधानिक विच्छेद है और इसका परिणाम परिवार का अंतिम रूप से विघटन होता है।"[73] ऐसी स्थिति में नारी ज्यादा प्रताडित रहती है। मर्द अपना रूआब पत्नी पर डालने को सदा उद्यत रहते है। कुसुम कुमार के 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' में पवन अपना अधिकार पत्नी सुषमा पर थोपने की कोशिश करता है। उनकी इच्छाओं के अनुसार जीने के लिए सुषमा को बाध्य बनाता है। लेकिन सुषमा इसके लिए तैयार न होगी है और पवन से शादी का संबंध तोडती है। दोनों अपने रिश्ते की पवित्रता खो बैठते है।

---

[73] सामाजिक विघटन - डॉ. सत्येंन्द्र त्रिपाठी, पृ.231

"सुषमा : और तुम? तुमने जो यह बवाला मुझे दिया है, तुम बहुत समझदार हो। मैं आज अपनी नहीं तुम्हारे मन की करके रहूँगी। एबोर्शन...तो एबोर्शन सही।

पवन : मैं सिर्फ तुम्हें अपने पाँव पर खडा करना चाहता हुँ और तुम.. मुझे गालत समझती हो।"[74]

'दिल्ली ऊँचा सुनती है' में माधोसिंह की बेटी नीति पति से परित्यका होकर, अपने को माँ-बाप का बोझ समझती है। पिता का आर्थिक दबाव और अपनी नियति से ऊबकर वह मानसिक संघर्ष का शिकार रह जाती है।

नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों में भी तलाक की समस्यायें भरी हैं। मर्द पत्नियों को कपडे बदलने की सहजता से बदलता है तो औरत अपने मन में प्यार के दिये जलाकर पति को पूजती रहती है। 'जो जैसी आपकी मर्जी' में शोभा काकू का पति यु. एस. में ओर एक स्त्री को अपनाता है और उसको साथ लेकर अपने देश लौटता है। यहाँ तलाक मिले बिना ही वह दूसरी शादी करता है। नाटक का एक ओर पात्र सुल्ताना पति द्वारा उपेक्षित होती है। एक लडका पैदा न कर सकने के कारण उसका पति एक ओर शादी करना चाहता है और उसे तलाक देता है। सुल्ताना की ये बातें पुरुषों की ऐसी मान्यताओं पर प्रहार करती है-

> "सुल्ताना- ये क्या बात है? जब चाहा बस औरत को तीन बार तलाक बोला और घर से बाहर निकाल दिया, बस फिर क्या था, इधर-उधर झाडू कपडा बरतन करने लगी बस इसी तरह कभी आधे पेट खाके कभी भूखे सो जाते थे।"[75]

---

[74] पवन चतुर्वेदी की डायरी- कुसुम कुमार, पृ.49

[75] जी जैसी आपकी मर्जी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.31

ऐसी विषम स्थिति में स्त्रीयों की मानसिक दशा ही कलुषित होती रहती है। तलाक जैसी कुटिल व्यवस्था का परिणाम सामाजिक असंतुलन ही है।

3.2.3.5 प्रेम विवाह की असफलता

पाश्चात्य जीवन का असर भारतीय समाज में बढता ज्यादा है ताकि प्रेम जैसी भावनाओं का मूल्य घटता जाता है। विवाह जैसे पवित्र सामाजिक संस्था को व्यक्ति केंद्रित बनाने का प्रयास ही प्रेम विवाह के संदर्भ में होती है। कालानुसार आये सामाजिक परिवर्तन विवाह संबंधी मान्यताओं में बदलाव उपस्थित किया है। शिक्षा का प्रचार-प्रसार पाश्चात्य संस्कार का आगमन आदि के कारण आये परिवर्तन विवाह संबंधी मान्यताओं पर भी क्रांती उपस्थित की है। जातीय, धार्मिक, आर्थिक परिस्थितियों के बावजूद व्यक्तियाँ एक दूसरे से मिलने को इच्छुक रह जाता है। लेकिन अधिकांशतः ऐसे विवाहों का परिणत फल उतना अच्छा न देख्र पडता है। वे जितनी तेज़ी से एक दूसरे की ओर आकर्षित होते है उसी तेज़ी से अलग भी होते है। 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' में सुषमा ओर पवन शादी के पहले प्यार किये थे लेकिन शादी के बाद कई कारणों से उनकी ज़िन्दगी असफल बन जाती है। उनके तनाव का कारण आर्थिक रह जाता है। गर्भच्छेद संबंधी दोनों की विभिन्न मान्यतायें, उनके वैवाहिक जीवन पर गहरा असर डालता है।

"सुषमा : नीच! कमीने! भेडिये! मुझे बस यही रिश्ता है तुम्हारा? ख्रून की एक बूँद तक नहीं मुझमें और मुझे ले चले हो उस कसाई ख्राने? मैं अच्छी तरह जानती हूँ तुम मुझसे घुटकारा पाना चाहते हो...मुझे इसी तरह ख्रत्म करना चाहते हो.. लेकिन मैं इतनी आसानी से तुम्हें सुख्र की नींद नही सोने दूँगी।"[76]

---

[76] पवन चतुर्वेदी की डायरी - कुसुम कुमार, पृ.49

दोनों के बीच का मन मुटाव उनके वैवाहिक संबंध को सत्यानाश कर देता है।

3.2.3.6 प्रेम का बदलता स्वरूप

सामाजिक परिवर्तन में मानव के मनोव्यापारों में भी परिवर्तन देख्र सकते है। प्रेम केवल प्रेम रह जाता है, शादी के लिए नही। प्रेम एक निश्चित लक्ष्य के लिए मात्र रह जाता है। प्रेम जैसे पवित्र मनोविकार का मूल्य ख्रो बैढता है। 'सुनो शेफाली' ऐसे मूल्यरिक्त प्रेम का एहसास दिलाता है। प्रस्तुत नाटक में बकूल शेफाली से प्यार इसलिए करती है कि पिता का राजनीतिक भविष्य हरा-भरा रहे। घिनौने राजनीति का हस्तक्षेप बकूल-शेफाली के प्यार संबंध को बिगाडता है। यहाँ बकूल का प्रेम ख्रोख्रला रह जाता है और शेफाली अपनी प्रेमी की कपटता को पहचान भी लेती है। टूटे दिल से शेफाली बिलख्रती है-

> "कौन लडकी नहीं चाहेगी दो साल तक सोते जागते सिर्फ एक ही सपना देख्रने के बाद वह उस सपने को अपनी ज़िन्दगी की हकीकत न बना ले?..तकलीफ तब और भी ज्यादा होती है जब पता चले कि यह हकीकत मेरे प्रेमी के वेश में कोई फैशनपुल मतलबी लोकसेवक है जो घात लगाकर मुझे कहाँ से कहाँ ले आया।"[77]

मतलबी प्रेमी अलग होने पर शेफाली दूर जाती है। 'जी जैसी आपकी मर्जी' में जिग्नेश वर्षा से प्यार करता है जिसके पीछे शारीरिक शोषण ही लक्ष्य था। उसको वर्षा से कोई commitment नहीं। जिगनेश के लक्ष्य को वर्षा पहचानती है और वह

---

[77] सुनो शेफाली - कुसुम कुमार, पृ.39

उससे मुक्त होना भी चाहती है। जब भी वह जिग्नेश से शादी की बात करती है तब वह कहता है-

> "ए वर्षा। also wanted to talk to you, क्या है कि अभी तमेरा ने मेरा क्या है मैं मेरे family का only son तो family business भी मुझे संभालना है ना, फिर मेरे मम्मी पापा ने भी मुझे कह दिया कि community के बाहर शादी नहीं करने का, तो मैं अपने मम्मी पापा के Against तो नहीं जा सकता था।"[78]

प्रेम का परिवर्तित स्वरूप सामाजिक मानसिकता में भी परिवर्तन लाया है। प्रेम ऐसा एक व्यापार बन बैठा है जहाँ प्यार नामक चीज़ का एहसास तक नहीं है। प्रेमियों का लक्ष्य केवल भौतिक सुख-सुविधाओं की तुष्टी रह जाता है।

3.2.3.7 पीढियों का संघर्ष

सामाजिक मूल्यों की नवीनता के परिणत फलों में एक है पीढियों का संघर्ष। पुरानी और नई पीढी में इतना अंतर आया है कि एक दूसरे को समझना और निकट पहचानना उनके लिए असंभव रह जाते है। पीढियों का संघर्ष वास्तव में आदर्शों का संघर्ष है। हर एक अपने आदर्शों में अटल-अचल रहने पर आपसी स्पर्धा उपजती है। व्यक्ति स्वातंत्र्य की सीमाओं के बावजूद, सामाजिक व्यवस्था में आदर्शों की समरसता अत्यंत ज़रूरी है। लेकिन ऐसी समरसता के अभाव में वे आपस में लडते-झगडते है। 'पवन चुतर्वेदी की डायरी' में पवन और डॉ. चतुर्वेदी आपसी लडाई के कारण अलग होते जाते है। पवन अपने पिता डॉ. चतुर्वेदी के आदर्शों को बरदाश्त

---

[78] जी जैसी आपकी मर्जी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.24

नहीं करते है। पिता के मशविरों पर चलना उसके लिए तकलीफ की बात है। वह अपने पिता की प्रतिष्ठा को अवज्ञा से देखता है-

"पवन : आप मुझे यह याद दिलाने आये है कि मैं डॉ. चतुर्वेदी का बेटा हुँ। पद्मभूषण डॉ. चतुर्वेदी का बेटा जिसके तौर तरीके, रहन-सहन, चाल-ढाल में सिर्फ अपने पिता की प्रतिष्ठा झलकनी चाहिए। बेटे की परिस्थितियाँ कुछ मायने नहीं रखती।"[79]

नयी पीढी का स्थायी भाव विद्रोह बन गया है। वे किसी से सहमत नही होना चाहता है। युव पीढी का प्रतिशोध, कभी-कभी अपनी परिस्थितियों को जीतने में उपकारी रह जाता है। अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उढाने की उनकी कोशिश संदर्भोचित भी दीख पडती है। 'ओम क्रांती-क्रांती' में महिला कालेज के अयोग्य-अकर्याक्षम अध्यापिका के विरुद्ध-छात्राओं का विद्रोह समीचीन लगता है। अनु, थैलमा, मेनका द्वारा प्रिंसिपल से दानी के विरुद्ध शिकालन भी चलती है। अपनी असंतुष्टि मिसिस दानी पर प्रकट करने को वे हिचकती नहीं है।

"मेनका : आप हर प्रश्न इसी तरह स्थगित करके हमें टाल देंगी तो इस क्लास का आख्रिर क्या होगा?"[80] ऐसी छात्रायें, उस विद्यालय में सकारात्मक क्रांति लाने में सफल भी हो पाते है।

'सकुबाई' तथा 'जी जैसी आपकी मर्जी' में भी नयी पीढियों का प्रतिशोध देख्र सकते है। 'सकुबाई' में सकु की बेटी अपनी माँ से विद्रोह प्रकट करती है। उनकी राय में माँ कब तक कष्टता से जूझकर जिये आगे ऐसा नहीं होना चाहिए है।

---

[79] पवन चतुर्वेदी की डायरी- कुसुम कुमार, पृ.10

[80] ओम क्रांती क्रांती - कुसुम कुमार, पृ.22

माँ को बेटी उपदेश देती है कि माँ आगे से किसी के सामने सर नहीं झुकाना। 'जी जैसी आपकी मर्जी' में सुल्ताना की बेटी सबीहा माँ से अनुरोध करती है कि वह माँ की तरह कष्टता झेलने को तैयार नहीं है। अपनी राय वह खुल्लम-खुल्लम व्यक्त करती है-

> "सबीहा : मैं किसी अनपढ से शादी नहीं करूँगी, मैं मार नहीं खाऊँगी, मेरे शौहर मेरे काम करने पर एतराज़ नही होना चाहिए। ससुराल वालों को और शौहर को, शादी के पहले ही जाकर डॉक्टर से ये भी समझ लेना चाहिए कि औरत को लडका होगा या लडकी ये मर्द की वजह से तय होता है ना कि औरत की वजह से।"[81]

पीढियों का संघर्ष समय के अनुरूप बन बैठता है। नयी पीढियों के बदलते स्वरूप एक ओर हानिकारक है तो दूसरी और उपकारी भी सिद्ध होते है।

3.2.3.8 आत्महत्या

आत्महत्या या आत्माहुति एक व्यापक समस्या है। आदमी अपनी परिस्थिति से सहमत न होने पर ही जीवन का अंत करता है। एक बढती सामाजिक समस्या के तौर पर आत्महत्या बदल गयी है। "आत्महत्या किसी भी ऐसी मृत्यु को कह सकते है, जो किसी व्यक्ति द्वारा स्वयं सकारात्मक या नकारात्मक क्रिया का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिणाम हो, जिसके परिणाम से पहले से ही परिचित है।"[82] आत्महत्या

---

81 जी जैसी आपकी मर्जी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.41

82 Emile Durkheim, Suicide, Trans, by N.A Spaul adind and G Simpon, The free press, Glencoe, Illinois, 1951, p.44 उद्धृत उपन्यासों का समाज शास्त्र-डॉ. विश्वंभर दयाल गुप्त।

व्यक्ति की परिस्थिति से संबंद्ध है। 'दिल्ली ऊँचा सुनती है' में माधोसिंह की बेटी नीति परित्यक्ता है। घर की गरीबी तथा अपने मानसिक दबाव नीति को आत्महत्या की ओर ले जाती है और वह आत्महत्या करती है। अपने आप को माँ-बाप के लिए एक बोझ न बनना वह चाहती है। इसलिए वह मौत को चुन लेती है।

नादिरा जी के 'सकुबाई' में सकु की बहन वासंती प्यार पाने के लिए किसी के साथ भाग जाती है और अंत में कामाटिपुरा में एक बुरी नौकरी की ओर फिसलती भी है। ज़िन्दगी में भटकी गयी वासंती अंत में आत्महत्या कर लेती है। 'जी जैसी आपकी मर्जी' में शोभा काकू अपने पति की दूसरी शादी से मन हारकर आत्महत्या कर लेती है। वह अपने पति के लिए इतज़ार की थी लेकिन उनकी उपेक्षा भरी नीति से वह हार जाती है और अपने को अंत करने का निश्चय कर लेती है।

> "काकू...काकू...काकू ने अपने दोनों हाथों की नसों को ब्लेड से काटकर आत्महत्या कर ली थी।"[83]

यहाँ शोभा काकू अपने पति की अलगाव से टूटकर खुद को समाप्त करती है।

3.2.3.9 स्वत्व का ह्रास तथा वैयक्तिक असफलता

व्यक्ति का सामाजिक संतुलन चेतन-अवचेतन मन की समरसता से प्राप्त है। और यही उसे कल्पनाजन्य ज़िन्दगी से दूर यथार्थता के धरातल पर लाती है। लेकिन जब ऐसी अवस्था पर न पहुँचने पर निराश व्यक्तित्व जीवन को अंधकार से भरा हुआ पाता है और असफलता पर शरण लेते है। "व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं की पूर्ती करना चाहता है, किंतु उसमें इनको पूरी करने की क्षमता नहीं होती, तब तक वह

---

[83] जी जैसी आपकी मर्जी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.23

दुःखद तथ्य को स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं होता फलतः कल्पना जगत में जाकर अपनी इच्छाओं की पूर्ती करता है। वास्तविक संसार जिसमें उसको रहना है और काम करना होता है, अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ती करने में समर्थ दिखाई नहीं देता।"[84] 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' नाटक का पवन अपनी असफलता से जूझकर ज़िन्दगी से थका हारा पाते है। एक फिल्म हीरो बनने की इच्छा की असफलता उसकी पूरी ज़िन्दगी को असफलता में परिणत होने की दुरवस्था नाटक में देख पाते है। एक सफल व्यक्ति का बेटा होकर पवन का असफल बन जाना, परिस्थिति और व्यक्ति के बीच के संबंध की ओर इशारा करता है। "पवन का परिवेश कुछ ऐसा है जिसमें वह जीता तो है पर खुलकर साँस नहीं ले पाता। किसी को अपना दुःख परेशानियाँ बता नही सकता। एक घुटन भरी ज़िन्दगी वह जीता है इसलिए मानसिक परेशानियों से ग्रस्त है।"[85] हर कहीं असफलता ही उनके लिए थी। और वही असफलता नाटक भर पवन को सताती है।

> "पवन : वक्त की केंचुल कभी अपने लिये भी बदलेगी। बाबू! हमने तो जो चाहा वह कभी नहीं पाया।"[86]

कामयाबी की ओर कोशिश का अभाव भी पवन की असफलता को गतिशील बनाता है। अपने द्वारा रखे गये कदमों से पीछे मुडने की विमुखता व्यक्ति के अहं का परिचायक है। पवन अपनी परिस्थितियों से आगे निकलने के लिए मन लगाकर कोशिश करता भी नहीं फलतः बार-बार धोखा खाने को विवश हो जाता है।

---

[84] शिक्षा मनोविज्ञान और मापन - डॉ. नाथूराम शर्मा, पृ.367

[85] कुसुम कुमार का नाट्य साहित्य- दीपा कुचेकर, पृ.75

[86] पवन चतुर्वेदी की डायरी- कुसुम कुमार, पृ.11

नादिरा जी के 'दयाशंकर की डायरी' में दयाशंकर में भी पवन की जैसी विवशता देख पाते है। दयाशंकर भी पवन के समान एक फिल्मस्टार बनने की इच्छा में विफल तथा अपनी बाकी परिस्थितियों से समझौता न पा सकता है। घर की आर्थिक विपन्नता दयाशंकर के लिए बाधायें उपस्थित करती है। महत्वाकांक्षा के कारण ही दयाशंकर की ज़िन्दगी बरबाद हो जाती है। अपनी अवस्था से ज्यादा, ज़िन्दगी की उन्नति के सपनों से समझौता पाने के कारण दयाशंकर ज़िन्दगी में पिछडा रह जाता है। पवन-

> "मेरी जेब में सौ रुपये नहीं तो क्या मैं सपने नहीं देख सकता? सपने देखना भी क्या इन लोगों की बपौती है? अगर मैं चाहूँ तो अपना प्रमोशन यूँ करवा सकता है।"[87]

दयाशंकर और पवन असफलता के प्रतिरूप बनकर अपने व्यक्तित्व को खोते दीख पडते है।

3.2.3.10 पलायनवादिता

व्यक्ति अपने लक्ष्य को सफल न पाने से ज़िन्दगी में आगे कोशिश करने को विमुखता दिखाता है जो उसको पलायनवादी बनाता है। कामयाबी के पहले नाकामयाबी को वे स्वीकारने को तैयार न हो जाते है। 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' में पवन अपनी परिस्थितियों से आगे निकलने के लिए मन लगाकर कोशिश करता भी नहीं है। अपने पराजय उसे पिता से भी जलन दिखाने को मज़बूर करता है।

---

[87] दयाशंकर की डायरी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.35

"पवन- आपका बेटा हुँ-यही सबसे बडा गुनाह है मेरा। मुझसे हर असाधारण चीज़ की आशा की जाती है... यहाँ हर कोई अपने से प्यार करता है...और जो बडा है, उसे तो बस अपने बडप्पन का बरकरार रखना है...जैसे आप!... आपका बडप्पन मुझे कुछ दे नहीं सकता तो, मुझसे कोई आशा क्यों करता है? मैं जैसा हुँ जिस हाल में हुँ, अच्छा हुँ।"[88]

उनके मनमुटाव नीतियों ने ही उसे ज़िन्दगी में पीछे की और थकेली है। सुषमा से दूसरे बच्चे का जन्म से पहले ही गर्भच्छेद कराने का उपदेश, मेहता द्वारा अपनी सारी पूँजि शेयर मार्कट में डालकर पैसा कमाने का लालच, पवन की वास्तविकता से मुँह मोडने की तत्परता दिखाती है। नाटक में पवन के वाचनालय की ह्रास स्थिति, उसके जीवन की जर्जरता का परिचायक है जो उनकी पलायन वादिता का स्पष्ट एहसास देता है।

'दिल्ली ऊँचा सुनती है' में माधोसिंह की बेटी नीति और खुद माधोसिंह अपने तमाम मजबूरियों से समझौता कर लेता है। नीति परित्यक्ता है और परिवार की कठिनाइयों में वह बोझ न बन जाए यही सोचकर ज़िन्दगी से हार मानकर आत्महत्या कर लेती है। इसी नाटक में माधोसिंह पेंशन न मिलने से तथा बेटी की आत्महत्या से परेशान हो जाता है।

"माधोसिंह : (रोते हुए) मुझे किसी चीज़ की आस नहीं अब.. नीति बेटी मेरे होते चल बसी भगना...कौन आय बची है अब मेरे लिए?"[89]

---

[88] पवन चतुर्वेदी की डायरी- कुसुम कुमार, पृ.10

[89] छः मंच नाटक, दिल्ली ऊँचा सुनती है- कुसुम कुमार, पृ.211

लेकिन अपनी पत्नी की ज़िन्दगी को अंधेरे में डालकर माधोसिंह मर जाते है। वह भी अपनी ज़िन्दगी में पलायनवादी बन बैठता है और आत्माहुती कर लेता है। 'जी जैसी आपकी मर्जी' में शोभा काकू अपने पति के गैर संबंध और दूसरी शादी से हताश होकर मृत्यु को स्वीकार कर लेते है। अपने सामने की सच्चाई से समझौता कराने की असमर्थता उसे भी पलायनवादी ठहराती है। व्यक्ति अपनी असफलताओं से भागकर कहीं छिपने की कोशिश करती है जिसका परिणाम उनकी मृत्यु या मानसिक असंतुलन से होता है। व्यक्ति के चेतन और अवचेतन मन की समरसता की माँग पर ज्यादा ज़ोर देते है।

'दयाशंकर की डायरी' में दयाशंकर अपनी महत्वाकांक्षाओं की असफलता से अपने को थका-हारा महसूस करता है। एक कल्पनाशील आदमी के नाते फिल्म और नाटक का भी दयाशंकर में स्पष्ट प्रभाव है। एक अभिनेता होने में असफलता-समाज में ऊँचे पद प्राप्त होने की इच्छा का पराजय, एम.एल.ए साहब की बेटी सानिया को पाने की नाकामयाबी दयाशंकर को ज़िन्दगी में परास्त करती है जो उसे कल्पनाशील जगत में जीने की प्रेरणा देती है। सच्चाई का सामना करने में पराजित दयाशंकार चेतना को खोकर पूर्णतः पागल हो जाता है। नेपाल राजा के रूप में उनका स्व-अवरोध उसकी मानसिक तृप्ति का कारण बन जाता है।

दयाशकर : "मुझे राजा के रूप में देख ले तो फौरन दो सैंकेंड के अंतर अपनी बेटी सानिया की शादी मुझसे कर दें।"[90]

[90] दयाशंकर की डायरी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.43

उनके लिए एक मामूली क्लर्क बनने से ज्यादा 'नेपाल का राजा' समीचीन लगता है। ज़िन्दगी की हकीकत से समझौता करने के लिए असामान्य मानसिक संतुलन ज़रूरी है, वह दयाशंकर में बिल्कुल नहीं था।

3.2.3.11 मानसिक असंतुलन

एक व्यक्ति का मन अपनी परिस्थितियों का उपज होता है। व्यक्ति अगर मानसिक तौर पर स्वस्थ न हो तो, हम कह सकते है कि उनकी बीमारी मानसिक तौर पर है। वह असामान्य व्यवहार का रह जाता है जो उसे एक सामाजिक व्यवस्था में न रहते लायक बनाता है। "वे व्यक्ति जो समाज स्वीकृत परिभाषा के अनुरूप सामान्य की श्रेणी में नहीं आते, मानसिक रूप से विघटित व्यक्तियों की श्रेणी में आते है।"[91] एक व्यक्ति के आर्थिक-सामाजिक परिस्थितियों की विषमता ही उसकी मानसिक बीमारी का कारण रह जाती है। 'दयाशंकर की डायरी' में दयाशंकर अपनी ज़िन्दगी में हर तरीके से हार जाता है। उनका अर्थाभाव, कार्यालयीन वातावरण, प्रेम की असफलता आदि दयाशंकर को पागल बना देती है। अपने आपको नेपाल का राजा मानता है और राजा के जैसे बर्ताव भी करता है।

> दयाशंकर- "फटी हुई बडशीट गाऊन की तरह पहनता है और कुर्सी के ऊपर खडे होकर आज मैने ये राजसी कपडे खुद बनाए।"[92]

अंत में वह पागलों की तरह होश खो बैठता है। पागलों के अस्पताल में उसे भर्ती कराते है। जब वह अपना होश संभालता है तब अपनी माँ पर शरण लेने की इच्छा

---

[91] उपन्यासों का समाज शास्त्र- डॉ. विश्वंभर दयाल गुप्त, पृ.194

[92] दयाशंकर की डायरी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.48

उसे होती है। अपनी कमज़ोर परिस्थितियाँ, दयाशंकर के मानसिक असंतुलन के कारण रह जाते है।

3.2.4 धार्मिक/सांस्कृतिक समस्यायें

प्रशासन, गैर सरकारी संगठनाओं के प्रयासों के फलस्वरूप धार्मिक रूढियों, अंधविश्वासों और कुप्रथाओं को एक हदतक रोकधाम किये है। लेकिन कुछ धर्म के ठेकेदारों द्वारा भोले-भाले लोगों को बहकाने के फलस्वरूप समय-समय पर देश में सांप्रदायिक दंगे-फसाद होते रहते है। रामजन्मभूमि और बाबरी मस्जिद को लेकर चल रहा विवाद सांप्रदायिक तनाव की ज़िन्दा दृष्टांत है। जहाँ धार्मिक रूढियों, अंधविश्वासों को लेकर स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिवेश प्रगतिशील हुआ है, वही कतिपय बुद्धिजीवियों के पास 'समझ के अभाव' के कारण समय-समय पर सांप्रदायिक तनावों से भी राष्ट्र गुज़र रहे है। कलाकारों की समस्याओं को भी गौर से देखने की ज़रूरत बन पडी है। वर्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में कलाकारों का मूल्य घटता जा रहा है। जिसका फलस्वरूप समाज में उनका पतन हो रहा है। कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर अपने नाटकों के द्वारा धर्म और संस्कृति के प्रतिगामी तत्वों का निषेध करके क्रियाशील और जीवंत तत्वों का समर्थन करते है।

3.2.4.1 धर्म के नाम पर सांप्रदायिकता

भारत एक धर्म निरपेक्ष राष्ट्र है। भारत का संविधान अपनी इच्छानुसार धर्म चुनने का और उसी धर्म में विश्वास रखने की स्वतंत्रता देते है। लेकिन देश विभाजन और तद्जन्य समस्यायें सांप्रदायिकता के मूल में है। भारत और पाकिस्तान के विभाजन के समय हिन्दु-मुस्लिम आपस में लडे जिसका शेषभाग आज भी ज़ारी है।

अलीगड, मुरादाबाद, संभलपुर जैसे देशों में होनेवाले झगडे इसका स्पष्ट एहसास है। United State Commission on International Religious Freedom (USCIRF) द्वारा 2015 के रिपोर्ट में भारत में बढनेवाली धर्म परिवर्तन (घरवापसी), चर्चों पर होनेवाले हमले पर आशंका प्रकट करते है। इन सबके फलस्वरूप, जहाँ अनेक धर्म एक राष्ट्र की दुहाई पीटी जाती है वही धार्मिक वैमनस्य के कारण राष्ट्रीय एकता और अखंडता को खतरा पैदा होता है। धर्म का लक्ष्य एक स्वस्थ समाज का गठन करना है। वास्तव में -"पवित्र वस्तुओं से संबंधित विश्वासों और आचरणों की व्यवस्था को धर्म के नाम से अभिहित करता है।"[93] लेकिन आज मानव अपने जाति धर्म पर इतना अंधा हुआ है सांप्रदायिकता क विषैला रंग बिखेरने लगा है। अंग्रेज़ों की 'फूट डालो और राजकरो' की नीति के कारण जिस सांप्रदायिकता का बीजबपन भारत में हुआ उसकी जडे आज पूरे विश्व में इतनी गहरी हो गयी है कि उन्हें निर्मूल करना असंभव है।

> "ऐसा लगता है जैसे हर पौधे पर अविश्वास के ज़हरीले फल लगने लगे बहु संख्यक का अल्पसंख्यक पर अविश्वास, इस प्रदेश का उस प्रदेश पर अविश्वास, इस जाति का उस जाति पर अविश्वास, इस भाषा भाषी का उस भाषा भाषी पर अविश्वास।"[94]

कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों में सांप्रदायिकता एक ज्वलंत विषय रहा है।

---

[93] Emile Durkheim, Elementary forms of the religious life free press, Glencoe, 1947, p.47 उद्धृत उपन्यासों का समाज शास्त्र-डॉ. विश्वंभर दयाल गुप्त।

[94] शाब्दिता, धर्मवीर भारती, ग्रंथावली, पृ.84

'दयाशंकर की डायरी' में दयाशंकर के द्वारा पूछा जानेवाला सवाल आज की सांप्रदायिक कुटिलता के इस युग में बहुत समीचीन लगता है। क्योंकि धार्मिक मतांधता मानव के रहे-सहे अकल को भी सत्यानाश कर रहे है। इनके पीछे जाने के बदले अपनी ज़िन्दगी को संपन्न बनाने में ज्यादा तत्पर रहे तो अच्छा ही होगा-

"दया : अरे इनसे कोई ये पुछो कि मंदिर-मस्जिद के चलने या बन्द होने से क्या तुम्हारे घर में राशन आता है? लेकिन नहीं सब साले।"[95]

प्रस्तुत संदर्भ सांप्रदायिक माहौल में बहुत व्यंग्यात्मक उभरता है। 2002 में गुजरात के गोधरा में उग्र सांप्रदायिक दंगे फूट डाला। जिसमें अनेक बेघर, बेपरिवार और बेसहारा बन गये। नादिरा जी का सुमन और सना गुजरात के सांप्रदायिक दंगे के शिकार हुए शरणार्थियों और उसके दर्द दिल का दस्तावेज है। धर्म की पवित्रता को नष्ट कर उसकी आड में ख़लिस्तान बनाने पर ज़ोर देनेवाले धार्मिक ढेकेदार पूरी धार्मिक मान्यताओं को हवा में उडाये है। नाटक के काल्पनिक पात्र कृष्णा का कथन इस संदर्भ में सही उतरता है-

"ये तो पागल लोग है अपने स्वार्थ के लिए पाप करते है और कहते है कि धर्म की लडाई लड रहे है धर्म। बच्चों की मुस्कुराहट से बढकर कोई धर्म नहीं है।"[96]

धर्म के नाम पर झगडने वाले लोग तथा उसको प्रेरित करनेवाले धार्मिक नेता लोग दोनों भारत जैसे धर्म निरपेक्ष राष्ट्र को, धर्मांधता में डालकर सत्यानाश की ओर थकेलते है।

---

[95] दयाशंकर की डायरी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.29

[96] सुमन और सना - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.60

3.2.4.2 धर्मांतरण

आज धर्म का स्वरूप अत्यंत विकृत होता जा रहा है। धर्म एक दूकानदारी बनकर रह गया है। इसके ठेकेदार जनता की भावनाओं का मनमाना शोषण कर रहे है। जो धर्म व्यक्ति की शांती और सुविधा के लिए निर्मित था, वह उसकी ही अशांती और असुविधा का माध्यम बन जाता है। जिसका एक मात्र कारण रह जाते है धार्मिक ठेकेदार। "धर्म मानव जीवन को नियमानुकूल चलानेवाला तत्व है। धर्म का अर्थ कल्याण है, परन्तु समय बीतने के साथ-साथ वह शोषण का हथियार बनकर रह गया है।"[97] कुसुम कुमार का 'लश्कर चौक' धार्मिक कठ्ठरता के कारण बरबाद हुए एक व्यक्ति का चित्र खींचता है। एक मुसलमान औरत को घर पर आश्रय देने के कारण, अपने धर्म से निष्कासित होने की नियती रामदास और परिवार को होती है। मामला विश्वास का नहीं बल्कि धार्मिक नेताओं की प्रतिष्ठा की रह जाती है। अपनी इच्छानुसार कायदे-कानून में परिवर्तन लानेवाले धार्मिक नेताओं के खिलौने बन जाते है आम आदमी। इसका उत्तम उदाहरण है रामदास का धर्मांतरण। नाटक यह भी दिखाता है कि धर्मांतरण मानसिक तौर पर एक व्यक्ति का धर्म बदलता नहीं।

"करीम : वही मातखाई है मैंने शर्माजी! वहीं....इस्लाम छू लेने मात्र से अब तक आत्मा कतई इस्लामिक नहीं हुई...मुसलमान हुआ ज़रूर हूँ पर इस हूक से छुटकारा नहीं पा सका कि मैं सच्चा मुसलमान नहीं हुँ...हिन्दु संस्कारों में रचा-बसा मेरा मन यह तसलीम करने से नहीं हिच-किचाता कि मैं और इस्लाम एकमेक नहीं हो सके।"[98]

---

[97] हिन्दी नाटकों में समसामायिक परिवेश - डॉ.विपिन गुप्त, पृ.184

[98] लश्कर चौक- कुसुम कुमार, पृ.54

दीपा कुचेकर के शब्दों में-

> "केवल धर्मांतरण करने से इंसान उस धर्म का नहीं होता। संस्कार शरीर पर नहीं आत्मा पर होते है। आत्मा पर किये गये संस्कार हम बदल नहीं सकते। अगर बदलने की कोशिश भी करते है तो कहीं न कही एक टीस, घृटन, द्वन्द्व, दुविधा छटपटाहट अपराध बोध के चक्रव्यूह में हम फँस जाते है।"[99]

सांप्रदायिकता देश की एकता तथा अखंडता को बिगाडने में सबसे आगे है। लश्कर चौक में रामदास का मामला एक प्रांत के सांप्रदायिक दंगे का कारण बन जाता है। दंगे शुरू होते है और हिन्दु-मुसलमान अपने-अपने धर्म के नाम पर लडते है। अंत में पाराबेगम की मौत भी दंगे की उपज के रूप में होती है।

3.2.4.3 जातीयता

जातीयता प्राचीन काल से भारत में रह रही है। उच्च जातियों का वर्चस्व पहले ही समाज में था लेकिन स्वतंत्र भारत में भी इसमें कमी नही हुई है। जाति व्यवस्था के कारण ही खान-पान, शादी विवाह, छुआछूत के नियम इतने कठोर है कि रूढीवादी समाज इन्हें छोड नहीं पाता। जाती का संबंध केवल गाँव तक सीमित नहीं है, प्रदेश और देश भी इससे आक्रांत है, मंत्री, अधिकारी और नेता जाती के लिए आज लड रहे हैं। जाति-व्यवस्था एक ऐसा पुराना किला है जो हमेशा सुरक्षा का भ्रम पैदा करता है। कुसुम कुमार के 'सुनो शेफाली' में शेफाली दलितों को दी जाने वाली रियायतों पर विद्रोह उठाती है और ऐसी रियायतों के उपभोक्ता बनने को कभी तैयार नहीं होती है। शेफाली-

---

[99] कुसुम कुमार का नाट्य साहित्य- दीपा कुचेकर, पृ.82

"स्कूल में कभी किताबें बँटती है कभी मुफ्त ऊन मिलती, कभी वर्दी का कपडा...लेकिन हम तीनों बहने रियायत न लेती...हम क्यों कहें कि हम हरिजन है? यह जनहरि लडकियाँ क्या हमसे कोई ज्यादा है?...घर से टूटा हुआ पैन-पेंसिल ले आयेंगी और लिखते वक्त उल्टे हसी से माँगेगी...उस वक्त हमीं काम आयेंगे इनके...मुझे यह सोच सोचकर कुछ ज्यादा ही दुःख होता है।"[100]

लश्कर चौक में यह जातीयता शीर्षस्थ रूप से दिखाई देती है। लीला के घर आयी मेहरुन्नीसा से उसकी जाती पूछती है। एक तो वह अपनी जाति को मानती है तो दूसरी ओर अपने समाज की जाति-व्यवस्था का पालन करना भी चाहती है लीला-

"वे कहेंगे जाने कौन जात की पकड के लाए।"[101]

हर जाति अपने को श्रेष्ठ मानती है। मानवीयता से बढकर जातीयता ही समाज में व्यापक रूप में देख्र सकते है।

अस्पृश्यता, जातीयता जैसे अनाचार ने समाज के निचले स्तर में ही नही बल्कि भारतीय सेना में भी अपना कब्जा स्थापित किया है। परंपरावादी या अशिक्षित समाज के साथ-साथ सुशिक्षित और सुसंस्कृत वर्ग भी जातिवाद के जाल में फँसा हुआ है। आधुनिक वैज्ञानिक युग में भी ऐसी चिंताओं का रहना मानसिक धुंधलका को सूचित करता है। नादिरा जी के 'आपरेशन क्लाउडबर्स्ट' में ले हसनेन के पिता सेना में तरक्की नहीं पाते है क्योंकि वह जाति से नीचा थे।

---

[100] सुनो शेफाली- कुसुम कुमार, पृ.23

[101] लश्कर चौक- कुसुम कुमार, पृ.16

"ले हसनेन : फिर ऐसे ख़यालात होने के बावजूद अगर आज ये मुल्क हमें यह एहसास कराए कि हमारा मजहब हमारे माथे पे एक बदनुमा दंग की तरह है तो फिर हम अपनी आनेवाली नस्तों को ऐसे पेशों में क्यों डाले। जहाँ वो तरक्की की सबसे ऊँची सीढी तक इसलिए नहीं पहुँच सकते क्योंकि उनका नाम हसनेन है।"[102]

'सुमन और सना' नाटक में जातियता के भटकाव के कारण लोग जाति बदलने को तैयार होते है। पटेल चाचा अपने जन्मभूमि जाने के लिए तत्पर है अतः जाति बदलने को भी तैयार है। यहाँ मानव के अतंर्मन को छूनेवाला संदर्भ ही देख पाते है। जातीयता भी एक त्रासद अवस्था है जिसमें आदमी अपनी अस्मिता को, कभी-कभार, खोने पडती है। ऐसी दुरवस्था में लोग अपने को अपमानित और बहिष्कृत पाते है।

3.2.4.4 धर्म के नाम पर राजनीति

समाज में पुराने समय से धर्म का सत्ता से अभेद्य संबंध रहा है। समाज के चतुर लोग आम आदमी का शोषण करते है और मसीहा बनकर रहते है। उनका रूप बदलता रहता है। वे कभी साधु के रूप में, कभी स्वयंसेवक बनते है, कभी राजनेता। सत्ता को अपने बचाव के लिए धार्मिक पाखंडों का आश्रय लेकर शोषण करने की सुविधा रहती है। 'सुमन और सना' नाटक में अमीना राजनीति से प्रेरित जेहाद की शिकार महिला है जो अपना जवान बेटा खो चुकी है।

---

[102] ऑपरेशन क्लाउडबर्स्ट - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.27

"अमीना- तब से आज आठ साल हो गये। उसकी कोई ख़बर नहीं, पता नहीं मेरा बेटा कहाँ होगा? तुम्हें इस बात की तसल्ली तो होगी कि तुम्हारा बेटा अब ईश्वर की पनाह में है, मुझे तो वो भी नहीं। मैं रोज उसके आने का इंतज़ार करती हुँ और उसके मरने का मातम भी...। कहते थे कि तेरे बेटे को जेहाद के लिए ले जा रहे है। क्या एक माँ की गोद उजाड देने का नाम जेहाद है?"[103]

धर्म अपनी कुटिल नीतियों के संचालन करने के लिए इन लोगों को अपना माध्यम बनाती है।

3.2.4.5 कलाकारों की समस्यायें

सहृदय को आनंदित करनेवाला कलाकार वास्तव में एक सेवा भाव का उत्तम उदाहरण है। क्योंकि मंच के आगे उनका कर्म मंच के पीछे की लीलाओं की अपेक्षा स्तरीय लगता है। कलाकार, अपने जीवन के बडे-बडे स्वप्न, आशा-आकांक्षा, मूल्य और आदर्श जीवन के यथार्थ के सामने चकना चूर होते देखपाता है। कलाकार की विवशता यह है कि वह मंच पर अपने परेशानियों को छिपाकर, अभिनय के लिए तैयार होना पडता है। कुसुम कुमार के 'रावणलीला' नाटक में रामलीला के प्रसंग में कलाकारों की चुनौतियों पर प्रकाश डाला है। यहाँ कलाकार अपने जीवन में कठिनाइयाँ झेलने को मज़बूर होते है। नाटक में करतार सिंह रावण का वेष करनेवाला प्रमुख कलाकार है लेकिन, उनकी राय में ऐसे होने से उसे ज़िन्दगी में कुछ लाभ नहीं मिला है।

---

[103] सुमन और सना - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.23, 24

"काशीराम : मगर यार रोटी-पानी का ठोस प्रबंध तो तेरे यहाँ भी है।

करतार : ठोस प्रबंध तो आपका है। अपना तो हाँ, कुछ कुछ प्रबंध ज़रूर है। सुबह शाम गंडेरियों की रेढी लगाने वाला में मेरा ठोस प्रबंध क्या है? आप बतायें, रामलीला में काम करने का शौक में भला मुफ्त में कैसे पा लूँ?"[104]

नाट्यमंडलियों की जर्जर अवस्था कलाकारों के जीवन पर भी गहरा असर डालती है। काशीराम तो अपने जीविकोपार्जन के लिए विवश होकर रामलीला का संचालन करता है। प्रस्तुत नाटक में काशीराम का कथन इसका उत्तम उदाहरण है-

"काशीराम- रामलीला समिति के पास अगर इतना धन होता तो यह बीस-बीस साल पुराने परदे न बदल लिये होते? और वह सारा फटी चार सामान दोबारा ना ख़रीद लिया जाता?"[105]

ऐसे कलाकारों की संख्या आज बढ रही है जो अपनी जीविकोपार्जन के लिए 'कला' की अपेक्षित करके, अन्य राह ढूँढने को लाचार हो जाता है। क्योंकि सिर्फ एक 'कलाकार' की हैसियत, उसे ज़िन्दगी में पहचान नहीं देती है।

3.2.4.6 झूठामूढा ज्योतिष

आज के ज़माने में ज्योतिष में अच्छा ज्ञान न होने के बावजूद भी लोगों को धोख्रा देनेवाले ज्योतिष अधिक है। अपने उदर-निर्वाह के लिए वे ऐसे करते है लेकिन लोगों को घोख्रा देते है। यह ज्योतिष का एक अक्षर भी नहीं जानते लेकिन

---

[104] रावणलीला- कुसुम कुमार, पृ.61

[105] रावणलीला- कुसुम कुमार, पृ.60

लोग उन पर अपने भविष्य की आस्था रखते है। 'सुनो शेफाली' में मनन आचार्च घाट पर रहनेवाला ज्योतिष है और उसी वृत्ति से जीविकोपार्जन करते है। वह खुद शेफाली से कहते है कि वह झूढ मूढ का ज्योतिष है। उनके कथन यों-

> मन्नन- "...मैं ज्योतिषी नही हुँ...रोज यहाँ भले कितने लोग आते हो...जिनके लिए मैं मन्नन आचार्य हुँ...पर मैंने आपसे कहा न! मैं वह नही हुँ...यमुना के इस घाट को मैं जहाँ तक हो सकता है...कुछ कायरों के इलाज के लिए इस्तेमाल करता हुँ!..."[106]

कई लोग ऐसे है जो झूठ-मूठ के ज्योतिष करके, लोगों का विश्वास में लेते है और धोखा देते भी है। सत्यमेव दीक्षित मन्नन आचार्य के पास अपने राजनीतिक भविष्य जानने के लिए आते है। मन्नन आचार्य का उचित रूप से फायदा भी उठाता है।

3.2.4.7 नशावृत्ति

मानव जाति गुण-अवगुणों का मूर्तरूप है। व्यक्ति में गुणों के साथ-साथ दोष भी छिपा हुआ है। इनमें नशा एक अत्यंत भीषण अवगुण माना जाता है। नशावृत्ति एक ऐसा भटका हुआ आग है कि तमाम सामाजिक व्यवस्था को जलाने की शक्ति उसमें है। आज समाज में शराब का उपयोग इतना बढा हुआ है कि नयी-पीढी इसका शिकार हो गई है। नशे के कारण व्यक्ति विवेक हीन होता है जिसके फलस्वरूप संपूर्ण समाज को अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पडता है। 'संस्कार को नमस्कार' नाटक में संस्कार चंद आश्रम की लडकियों को जबरदस्ती

---

[106] सुनो शेफाली- कुसुम कुमार, पृ.27

शराब पिलाकर उनका शारीरिक शोषण करता है। शक्ति के मना करने पर संस्कार उससे कहता है-

"संस्कार : गिलास तो लाओ।

बस-बस अभी इतनी ही। तुम भी पियो हमारे साथ। दोनों साथ-साथ पियेंगे। यह ताकत की दवा है। इससे बहुत ताकत आती है।

शक्ति : इसमें बहुत ताकत है, लेकिन हम कमज़ोर नहीं है।

संस्कार: पहले जितनी ताकत है उससे दोगुनी आएगी। लाओ अपने लिए एक गिलास और लाओ।"[107]

संस्कार चंद नशे में मदमस्त होकर शक्ति पर अपना रूआब डालता है।

3.2.5 शैक्षिक समस्याएँ

शिक्षा का परम लक्ष्य ही सुयोग्य, शिक्षित नागरिक का निर्माण है। डॉ. विपिन गुप्त का शिक्षा संबंधी मत यों है-"समाज में शिक्षा की अनिवार्य भूमिका है। शिक्षा का संबंध धर्म, राजनीति, व्यक्ति, उद्योग, अर्थ आदि सभी से है। यही कारण है कि शिक्षा सामाजिक नियंत्रण की प्रमुख अभिव्यक्ति है।"[108] लेकिन ऐसी अनिवार्य भूमिका निभानेवाली शिक्षा आज ह्रासोन्मुख अवस्था में है। स्कूल केवल मोटे मुनाफे के लिए खोला जाता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने बच्चों को अच्छी सी अच्छी शिक्षा दिलवाना चाहता है लेकिन शैक्षिक क्षेत्र का भ्रष्टाचार और मनचलन

---

[107] संस्कार को नमस्कार- कुसुम कुमार, पृ.47

[108] हिन्दी नाटकों में समसामयिक परिवेश- डॉ. विपिन गुप्त, पृ.119

योजनायें छात्रों के भविष्य से खेलती है। आलोच्य नाटककारों के नाटकों में शिक्षा संबंधी विभिन्न समस्याओं का सच्चा बयान मिलता है।

3.2.5.1 अध्यापकों की कर्तव्यहीनता

अध्यापक समाज को अंधकार से रोशनी में लाने के लिए कर्मरत थे। पुराने ज़माने में गुरु समाज में परम पूज्यनिय थे। कबीर की गुरु संबंधी मान्यतायें हम सबको मालूम है। वे गुरु और ईश्वर दोनों में गुरु को सबसे प्रमुख मानते है। क्योंकि गुरु ही ईश्वर को दिखानेवाला है। लेकिन आज के अध्यापक कर्तव्यहीनता का पर्याय रह गये है। कुसुम कुमार के 'ओम क्रांति-क्रांति' नाटक में वर्तमान अध्यापकों के ढोंग, पाखंड और अयोग्यता पर करारा व्यंग्य है। नाटक की मिसिस दानी, मिसिस मंगला ऐसे अध्यापकों की कोटि में आते है, जो डिग्रियाँ बहुत हासिल करती है लेकिन पढाना कुछ नहीं जानते। थैलमा के कथन से यह स्पष्ट होता है कि-

"थैलमा : मिसिस दानी, एम. ए, पी.एच.डी।

अनु : (छिडी हुई) छोडो यार वो पी.एच.डी कर ले चाहे पि.एच.डी का बाप, रहेगी तो वही जो वो है। पढाना एक शब्द आता नहीं। ना फर्स्ट इयर में पीछा छूटा था इसमें, ना अब सेकेंड इयर में उबरने देगी हमें।"[109]

पहले अध्यापक अपनी ईमानदारी, कर्तव्य बोध्य जैसे सत्गुणों की प्रतिमूर्तियाँ थीं, जिसका असर नव नागरिकों पर भी पडता है। अपने स्वत्व पर अनुचित का हावी

[109] ओम क्रांती क्रांती - कुसुम कुमार, पृ.10

होना वेईमानी की पराकाष्ठा था। लेकिन आज अध्यापक 'द्रोणाचार्य' बन जाते है जिसका उदाहरण है प्रस्तुत नाटक के अध्यापक।

3.2.5.2 आदर्श शिक्षक का कर्तव्य

भारतीय समाज में गुरु को सबसे प्रमुख स्थान देते है। उसे परमात्मा के समकक्ष माना गया है किंतु लेकिन आदर्श शिक्षक ही ऐसे पद का अधिकारी रह जाता है। अपने कर्तव्यों का पालन करनेवाला गुरू ही एक आदर्श शिक्षक की भूमिका में उचित स्थान पा सकते है। ऐसे अध्यापक विद्यार्थियों के हित का ख्याल रखते है तथा उनके मन में प्रतिष्ठा भी प्राप्त करते है। 'ओम क्रांती क्रांती' में मिसिस पंत ऐसी एक अध्यापिका है जो छात्रों के सर्वांगीण विकास पर ध्यान देनेवाली है। अपनी कक्षा की नयी पीढी की छात्राओं को वह ज्यादा प्यार से पढाती है। उसकी छात्राओं में एक है थैलमा जो कहती है-

> "थलमा बहुत बहुत प्यारी टीचर है मिसिस पंत!! पढाती है तो मेरा तो दिल बाहर को आता है!...हँसती है तो लगता है उनकी हँसी की नकल उतार लो...आँखों में चमक इतनी है...इतनी है उनके कि बस!...जी चाहता है, हम भी उस चमक की एक बूँद अपने अन्दर उतार लें।"[110]

शिक्षकों का कर्तव्य है कि वह अपने दायित्व को ईमानदारी से निभाए।

3.2.5.3 शिक्षा का व्यापार

शिक्षा के व्यावसायीकरण ने शिक्षा का और अध्यापकों के स्तर को गिरा दिया है। आज शिक्षा मात्र एक व्यापार बनकर रह गई है। 'ओम क्रांती क्रांती' नाटक में

---

[110] ओम क्रांती क्रांती - कुसुम कुमार, पृ.37

इसका स्पष्ट चित्र हम देखे सकते है- हिन्दी साहित्य में कबीर पर पी.एच.डी की उपाधी प्राप्त मिसिस दानी ये भी नहीं जानती कि कबीर अनपढ थे या नही। मिसिस दानी जैसी ऐसी अध्यापिकायें शिक्षा के औद्योगीकरण का उत्तम उदाहरण है। रिश्वत खोरी, सिफारिश जैसे अनैतिक तरीके से अयोग्य अध्यापक शिक्षा संस्थाओं मे नौकरी पाते है। जिसके कारण शिक्षा का स्तर गिर जाता है।

प्रिंसिपल और कालेज के अधिकारी वर्ग सब इसी का बोलबोला रह गये है। क्योंकि वे न्याय के पक्ष में न रहकर पैसे के पक्ष में ही रह जाते है। दिशाहिन भविष्य में युवापीढी के भटकने की ज़िम्मेदारी अध्यापक को है। धन ही अध्यापकों का परम लक्ष्य रह गया है। वे एक आराम की ज़िन्दगी की ओर तत्पर है, सादगी और नम्रता का अभाव उनमें ग्रसित है। इस नाटक में इसका उदाहरण मिलता है।

> "मिस थैलमा ने जो ये सोचकर कि यह एक ऐसा प्रफशन है जिसमे रहकर जिओं न जीने दो का मूड कुछ जबरदस्ती करता है।"[111]

इस तरह अध्यापन क्षेत्र में वाणिक वृत्ति ही आज मुखरित है।

3.2.5.4 अध्यापकों की अनुशासन हीनता

समाज में अध्यापक आदर्शवान होते है। क्योंकि वही अच्छे नागरिक का निर्माण करते है। ऐसी अवस्था में अध्यापक की अनुशासन हीनता पूरे भविष्य पर प्रभाव डालती है। कुसुम कुमार के नाटक 'ओम क्रांति क्रांति' में कक्षा में समय के मूल्य पर घोर-घोर भाषण देने वाली मिसिस दानी, कक्षा में बीस-तीस मिनट के बाद आती है। इस पर मीना व्यंग्य करती है-

---

[111] ओम क्रांती क्रांती - कुसुम कुमार, पृ.10

"समय मत बरबाद कीजिए! समय अमूल्य है- अरे यह पूरी कक्षा गायब कहाँ है? तुम लोग कुल चार ही लडकियाँ हो यहाँ? अनुशासन हीनता की भी कोई हद होती है। मुझसे तो इसकी मिसाल तक देते नहीं बनता-तुम लोग चाहे तो तुम भी जा सकती हो..."[112]

कक्षा में आने को हिचकनेवाली अध्यापिका तत्काल कॉपियाँ लिखने का इतज़म करती है जो उनके निकम्मे पन का दृष्टांत है। ऐसे अनुशासनहीन अध्यापक भविष्य के लिए खतरा ही नहीं, भीषण परिस्थितियों का निर्माण भी करते है।

3.2.5.5 अशिक्षा

एक व्यक्ति के जीवन की अनमोल वस्तु है शिक्षा। ज़िन्दगी में एक व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण संपत्ती है उसकी शिक्षित अवस्था। अशिक्षा व्यक्ति को जीवन भर अंधकार में रखते है अशिक्षित अपने सामने के अवसरों को उपकारी न बना सकते है। 'सकुबाई' नाटक में शिक्षित न होने के कारण ही सकु तथा वासंती ज़िन्दगी में तकलीफ झेलती है। सकु एक हद तक जीत पाती है जिसका कारण सकु का आत्मविश्वास। वासंती अपनी परिस्थितियों से घेरकर आत्महत्या भी करती है। एक व्यक्ति के अस्तित्व का नियामक तत्व है शिक्षा जिसका अभाव उसकी सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों पर प्रभाव डालता है। ऐसा एक पहचान सकु को मिलता है और सकु अपनी बेटी को अच्छी शिक्षा देती है। 'जी जैसी आपकी मर्जी' में सुल्ताना में अपने समाज में गयी-बीती रह जाती है। लेकिन सुल्ताना अपनी

---

[112] ओम क्रांती क्रांती - कुसुम कुमार, पृ.15

बेटियों को अच्छी शिक्षा देता है और उसे ज़िन्दगी में उन्नती की ओर जाने का राह भी दिखता है। उनकी बडी बेटी सबीहा अपनी माँ से कहती भी है-

"अम्मी तुम्हें तो तालीम की कद करनी चाहिए। अगर तुम पढी-लिखी होती तो क्यों ये दिन देखने पडते?"[113]

सुल्ताना की बेटी द्वारा प्रस्तुत यह कथन शिक्षा की महत्ता को अपने चरम सीमा पर पहुँचता है। शिक्षा का महत्व अनमोल है जिसे मानव अपने जीवन को सुदृढ बनाने में सशक्त मध्यम है।

3.2.5.6 शिक्षित बेरोज़गारी

बेरोज़गारी समाज की एक विकृत अवस्था है। इसमें ही, शिक्षितों की बेरोज़गारी आज के इस माहौल में सबसे बडी समस्या है, जिसकी संख्या कुल बेरोज़गारी से ज्यादा है। "ये शिक्षित बेरोज़गारी युवा पीढ़ी से संबंधित है। अतः इससे संबंधित युवा विक्षोभ की समस्या भी गंभीर रूप धारण करती है एवं कभी-कभी वह सामाजिक विस्फोट का कारण भी बन जाती है।"[114] 'सकुबाई' नाटक में शिक्षित बेकारी एक सामाजित सच्चाई के रूप में चित्रित है। टेलिशोपिंग के एजंड के रूप में एक लडकी मिस साहब के फ्लेट में आती है और सामान ख़रीदने की विनती करती है। सकु कहती है-

---

[113] जो जैसी आपकी मर्जी- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.34

[114] आधुनिक भारत की सामाजिक समस्यायें- एच.एस. वर्डिया, पृ.89

"सकूबाई - पर ये तो पढी-लिखी होगी बारहवीं चौदहवीं...हम तो एकदम अनपढ़ है।...ए देवा SS क्या ज़माना आ गया है। पढे लिखे लोग भी घर-घर-घूमते है। और अनपढ भी।..चलो इस बात में तो हम लोग बराबर हुए।"[115]

शिक्षित लोगों की बेकारी एक सामाजिक विडंबना है और इसका उचित रूप से निवारण एक सामाजिक ज़रूरत भी है।

निष्कर्ष

इस प्रकार दोनों नाटककारों ने मानवीय जीवन और समाज, देशकाल की सभी समस्यायें, विसंगतियाँ अपने नाटकों के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों की समस्याओं को अपने नाटकों में समेटने का प्रयास किया है। अपने परिवेश की सठीक प्रस्तुति नादिरा ज़हीर बब्बर और कुसुम कुमार के नाटकों की अपनी विशेषता है। राजनैतिक क्षेत्र की तमाम कुटिलताओं का इतना नंगा प्रस्तुतीकरण किया गया है कि वर्तमान सारी राजनैतिक परिस्थितियों का आँखों देखा हाल हमारे समुख उपस्थित है। कुसुम कुमार के 'सुनो शेफाली', 'संस्कार को नमस्कार', तथा नादिरा ज़हीर बब्बर के 'अप्परेशन क्लाउडबर्स्ट' तथा 'सुमन और सना' इसके दृष्टांत है। आर्थिक समस्याओं में पिसता आम आदमी की दयनीयता का एक प्रत्यक्ष मिसाल है इनके नाटक। अर्थ की महत्ता, समाज में असमानता की सृष्टि करती है जिसका परिणतफल आम आदमी ही भोगता है। दिल्ली ऊँचा सुनती है, रावणलीला,

[115] सकुबाई- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.23

सकुबाई, पवन चतुर्वेदी की डायरी, दयाशंकर की डायरी आदि नाटकों में अर्थ की असमानता तथा आर्थिक दबाव में पिसते आदमियों का सच्चे चित्र खींचे है। बदलते समय के अनुसार सामाजिक गतिविधियों में भी बदलाव आया है जिसके कारण समाज में कलुषित वातावरण रह गया है। सामाजिक मूल्यों का अधःपतन, समाज के सभी स्तरों को गिरा दिया है। जिसके फलस्वरूप पति-पत्नि, बाँप-बेटे के रिश्तों में भी तनाव उपस्थित किया है। 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' नाटक सामाजिक गतिविधियों का सच्चा बयान करती है। हमारी धार्मिक मान्यताओं में वैयक्तिक स्वार्थता की घुसपैट ने सारी धार्मिक परिस्थितियों को कलुषित बना रखा है। जो धर्म मानवकल्याण के लिए सृजित है, उसी के द्वारा ही मानव आपस में लडते दिखाई देते है। 'लश्कर चौक', 'सुमन और सना' आदि नाटकों में धार्मिक मान्यताओं का गिरावट दीख पडता है। शिक्षा के क्षेत्र में, व्यावसायीकरण, भ्रष्टाचार आदि ने शिक्षा के पवित्र लक्ष्य का सत्यानाश कर दिया है। शिक्षा का क्षेत्र भी अब इतना गिर गया है कि अध्यापक भी अपना मूल्य खो चुके है। 'ओम क्रांती क्रांती' नाटक में अकार्यक्षम अध्यापकों की कर्तव्यशून्यता का स्पष्ट एहसास मिलता है। इस प्रकार हम कह सकते है कि कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों में युगीन संवेदना भरा हुआ है। दोनों नाटककार ने अपने समय की सारी समस्याओं को यथार्थ रूप से अपने नाटकों में प्रस्तुत किया है और अपने सामाजिक सरोकार का प्रमाण भी दिया है।